अनुक्रम

विज्ञान-युग के तीन कर्तव्य • १

पूछा जाता है कि अगर विज्ञान बढ़ता ही रहा तो क्या उससे दुनिया का भला होगा ? विज्ञान जिस तरह बढ़ता रहा है उसी तरह बढ़ता रहे, क्या यह उचित है ?

विज्ञान की उन्नति का यत्न प्राचीनतम

विज्ञान इन्हीं दिनों बढ़ रहा है ऐसी बात नहीं। मनुष्य जब से पैदा हुआ तभी से विज्ञान के लिए प्रयत्न करता आया है। रेडियो प्रकट हुआ तो हमें लगा कि यह बड़ी भारी खोज हुई विज्ञान आगे बढ़ा। लेकिन इससे भी बड़ी-बड़ी उन्नति विज्ञान ने पहले के जमाने में की है। पुराने जमाने में लोगों ने जो प्रयोग किये उन्हींके आधार पर आज का विज्ञान चल रहा है। अग्नि पैदा करना पहले के लोग नहीं जानते थे। उसके बाद जब अग्नि की खोज हुई तो जीवन में कितना फर्क करना पड़ा होगा ? अब जरा सोचिये कि आपके घर में जो अग्नि है वह दस-पाँच दिन प्राप्त न हो तो आपकी क्या हालत होगी ? सबसे पहले तो हम लोगों के घरों की रसोई ही बन्द हो जायगी। फिर ठंड से ठिठुरने लगेंगे। अग्नि के आधार पर कितनी ही वनस्पतियों की दवाएँ बनती हैं वे कैसे बनेंगी ?

इसके भी पहले एक जमाना ऐसा था जब कि केवल पत्थरों से ही लोग अपने औजार बनाते थे। उनके पास लोहा नहीं था। उसके बाद जब लोहे की खोज हुई, तो जीवन में कितना परिवर्तन हुआ होगा ? जरा सोचिये अगर दस दिन के लिए लोहे का बहिष्कार कर दें तो क्या-क्या परिवर्तन होंगे ? पेन्सिल छीलने के लिए चाकू नहीं मिलेगा कपड़े सीने के लिए सुई न मिलेगी काटने के लिए कैंची नहीं मिलेगी, किसान को हल के लिए फाल नहीं मिलेगा

और खोदने के लिए कुदाली नहीं मिलेगी फावड़ा नहीं मिलेगा किस तरह आपका काम चलेगा ? ये जो नये-नये औजार बनते हैं, मी लोहे के आधार पर बनते हैं। लकड़ी का काम बनता है, लेकि छीलने का काम बिना लोहे के नहीं बनता। इसलिए लोहा ज हासिल हुआ होगा तो लोगों के जीवन में कितना परिवर्तन हुआ होगा !

पहले लोग गाय का दूध निकालना नहीं जानते थे। शिकार कर प्राणियों को खाते थे। लेकिन जिस किसीको यह अक्ल सूझी गाय पर हम प्यार कर सकते हैं उसे कुछ सिखा सकते हैं और उस स्तनों से दूध ले सकते हैं उसने कितना भारी खोज किया होगा मतलब यह कि खेती की खोज गो-रक्षा की खोज अग्नि की खोज कपास से कपड़ा बनाने की खोज—कितनी ही खोजें पहले की गयीं।

विज्ञान की महत्ता

पहले भाषा की शक्ति का आविष्कार हुआ। उसके बाद हम आ एटम तक पहुँच गये हैं। बिजली तो पश्चिमी राष्ट्रों में कब से आविष्कृ हो चुकी है। हिन्दुस्तान में भी चन्द दिनों में आप बिजली चमत्कार देखेंगे। अणुशक्ति से भी कई प्रकार के कारखाने चलेंगे विकेन्द्रित उद्योग भी गाँव-गाँव चलाये जा सकेंगे। इस तरह विज्ञा प्राचीन काल से आज तक लगातार बढ़ता आया है बढ़ेगा भी बढ़ना चाहिए उससे मानव जीवन में सुन्दरता आयेगी। मनुष्य सृष्टि का जितना ज्ञान होगा उतना ही वह सृष्टि का रूप अच्छी तर समझकर उसकी शक्ति का उपयोग कर सकेगा। मैं यह चश्मा लगा हूँ। यदि यह चश्मा न होता तो मेरे सामने जो लोग हैं उन्हें मैं दे भी नहीं पाता इतना अन्धा हो गया हूँ। इस तरह विज्ञान उपयोग स्पष्ट है।

आत्मज्ञान से ही विज्ञान को सही दिशा

विज्ञान में दोहरी शक्ति होती है। एक विनाश-शक्ति और दूस

विकास-शक्ति। यह सेवा भी कर सकता है और संहार भी। अग्नि-नारायण की खोज हुई तो उससे रसोई भी बनती है और घर में आग भी लगायी जा सकती है। किन्तु अग्नि का उपयोग घर फूँकने में करना है या चूल्हा जलाने में यह सवाल विज्ञान में नहीं है। यह सवाल तो आत्मज्ञान में है। जैसे पक्षी दो पंखों से उड़ता है वैसे ही मनुष्य आत्मज्ञान और विज्ञान इन दो शक्तियों से अग्रसर हो सुखी होता है। हर यन्त्र में दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। एक गति बढ़ानेवाली और दूसरी दिशा दिखानेवाली। मोटर को ही लीजिये उसकी दस मील की रफ्तार है। तो उसे २ मील या ३ मील करना यन्त्र पर निर्भर होता है। लेकिन मोटर को पूर्व पश्चिम किंवा दक्षिण की तरफ मोड़ने का काम दूसरा यन्त्र करता है। अगर इनमें से एक भी यन्त्र न हो, तो काम नहीं चलेगा। मोटर को दोनों यन्त्रों की जरूरत रहेगी। हम पाँव से चलते हैं आँख से नहीं। आँख से तो दिशा मालूम होती है। इसी तरह आत्मज्ञान है आँख और विज्ञान है पाँव। अगर मानव को आत्मज्ञान की दृष्टि न हो तो वह अन्धा न मालूम कहाँ चला जायगा कुछ पता नहीं। इसी प्रकार उसे आँखें हैं लेकिन पाँव न हों तो इधर-उधर देख सकेगा पर घर में ही उसे बैठे रहना पड़ेगा। इसलिए बिना विज्ञान के संसार में कोई काम ही न हो सकेगा और बिना आत्मज्ञान के विज्ञान को ठीक दिशा ही न मिलेगी।

आज विज्ञान बिक रहा है

लेकिन आज विज्ञान बिक रहा है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक विनाशक शस्त्रास्त्र बनाने को महत्त्व देते हैं। वे इतने अक्लवाले होने पर भी पैसे से खरीदे जा सकते हैं। इन्हें पैसा मिलने पर जिस प्रकार की खोज करने की आज्ञा दी जाय उसी प्रकार की खोज वे कर देंगे फिर उससे चाहे दुनिया खतम हो जाय चाहे दुनिया का भला हो। अगर वैज्ञानिक इतना प्रण करें कि किसी के पैसे से वे खरीदे न

जायेंगे और ध्वंसात्मक शस्त्रास्त्र बनाने में हरगिज योग न देंगे संहार के काम की कोई भी खोज-खोज न करेंगे तो दुनिया बच जायगी। लेकिन वैज्ञानिकों में यह अक्ल तब तक नहीं आयेगी जब तक सारा समाज इस तरह के विचार नहीं अपनायेगा। संहार के लिए शोध करने की वृत्ति को लोग जब घृणा की दृष्टि से देखेंगे तभी वह बन्द होगा।

विज्ञान से अहिंसा का गठबन्धन हो

यदि विज्ञान बढ़ता जायगा और उसे हम बढ़ने देना चाहते हैं तो उसके साथ अहिंसा को भी रखना चाहिए। तभी दुनिया का भला होगा। विज्ञान और अहिंसा दोनों का योग होगा तो दुनिया में—"जमीन पर स्वर्ग उतर आयेगा। लेकिन अगर विज्ञान और हिंसा की जोड़ी बन गयी उनकी शादी, गठबन्धन हो गया तो दुनिया बरबाद हो जायगी। हम अहिंसा पर इतना ज्यादा जोर इसीलिए देते हैं कि विज्ञान बढ़े। अगर विज्ञान को बढ़ाना है तो उसके साथ उसकी रक्षा के लिए अहिंसा की जरूरत रहेगी ही। अगर आप हिंसा को कायम रखना चाहते हैं तो विज्ञान को नहीं बढ़ाना चाहिए। पहले के जमाने की हिंसा अलग तरह की थी। भीम और जरासन्ध की कुश्ती हुई। जो मरनेवाला था मर गया, जो बचने वाला था बच गया। दुनिया को विशेष हानि नहीं हुई। अगर हिंसा कायम रखना चाहते हैं तो लाठी से लड़ें हाथ से लड़ें बन्दूक को ताक क्यों करना चाहते हैं?

हिंसा से विज्ञान का खात्मा

चीज आती जायगी तो कानून बेकार होगा और समाज में खूनी विचार फैलेंगे विग्रह बढ़ेगा।

अहिंसा के साथ भी एक कानून हो सकता है। एक काम बहुत से व्यक्ति अगर कर रहे हैं और उससे लोकमत तैयार हो जाय, तो बचा हुआ थोड़ा-सा काम कानून से हो सकता है। इस तरह अहिंसा में भी कानून का एक स्थान है। लेकिन वह स्थान आखिर में आता है। अहिंसा से भूमि-समस्या के हल की जो कोशिश चल रही है वह विज्ञान के युग में एक बड़ी भारी शक्ति है।

विज्ञान और यन्त्र

एक बात लोगों की समझ में नहीं आती। वे कहते हैं कि आप छोटे-छोटे उद्योग करना चाहते हैं इसीलिए विज्ञान का विरोध करते हैं। लोगों को लगता है कि बड़े-बड़े उद्योग खड़े करने का नाम ही विज्ञान है। छोटे-छोटे उद्योगों के साथ विज्ञान का सामंजस्य नहीं बैठता। लेकिन यन्त्रों के उपयोग का विज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। किस यन्त्र का कहाँ उपयोग करना और कहाँ नहीं, यह विज्ञान का विषय नहीं। अगर किसी समाज में लोक-संख्या बहुत ज्यादा है और उनके लिए काम कम है तो उस समाज में बड़े यन्त्र नहीं चलेंगे। हिन्दुस्तान में मनुष्य बहुत हैं और जमीन कम। जापान में भी जमीन कम और मनुष्य ज्यादा हैं। ऐसी हालत में वहाँ छोटे-छोटे पैमाने पर ही उद्योग चलेंगे। जहाँ मनुष्य-संख्या कम और जमीन बहुत ज्यादा हो (जैसे अमेरिका और रूस आदि), वहाँ बड़े-बड़े उद्योग चल सकते हैं।

छोटे यन्त्र बनाना हो तो विज्ञान उन्हें बना देता है और बड़े बनाना हो तो उन्हें भी बना देता है। यह न समझें कि छोटे यन्त्र बनाने से विज्ञान की कुशलता कम हो जाती है और बड़े यन्त्रों से ज्यादा। यह छोटी-सी घड़ी है। क्या इसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है? छोटा-सा थर्मामीटर है। क्या उसमें विज्ञान का

उपयोग कम हुआ है ? एक छोटी-सी सिंगर मशीन है, क्या उसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है ? एक छोटा-सा कैमरा है तो क्या उसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है ? क्या कभी बिना विज्ञान के कैमरा बनेगा ? बिना विज्ञान के घड़ी बनेगी ? इसलिए क्या छोटे और क्या बड़े सभी यन्त्र बनाने में विज्ञान का उपयोग होता है। अतः छोटे यन्त्र बनाना है कि बड़े यन्त्र यह आप तय करेंगे। आप समाज-शास्त्र के अनुसार विज्ञान को हुक्म दीजिये तो विज्ञान आपकी आज्ञा के अनुसार यन्त्र बना देगा।

विज्ञान के युग में अगर हिन्दुस्तान को जीना है, तो क्या-क्या करना होगा ? एक तो यह कि मानव की समस्याएँ अहिंसा की शक्ति, नैतिक शक्ति से ही हल करने का निर्णय किया जाय। दूसरा यह कि विज्ञान का उपयोग सेवा के साधन में करें, संहारक साधन बनाने में नहीं। और तीसरा यह कि विज्ञान को बड़े यन्त्र बनाने की आज्ञा देनी है या छोटे की, यह परिस्थिति देखकर तय किया जाय। ये बातें हम ध्यान में रखते हैं, तो विज्ञान से बहुत लाभ होगा।

पट्टामुण्डाई (उत्कल)
१-९-'५५

आत्मज्ञान का लक्ष्य सामाजिक समाधि • २

आज लोग परलोक, चन्द्र और मङ्गल से सिर्फ मजा या आनन्द भर नहीं चाहते बल्कि यह चाहते हैं कि प्रकृति का पूरा रहस्य मानव के हाथ में आ जाय। निस्सन्देह यह अप्राप्य ध्येय है। कितना भी यत्न करे ब्रह्माण्ड की शक्ति मानव के हाथ में कैसे आयेगी? लेकिन विज्ञान का समाधान इसीमें है। वह ऐसे ध्येय के बिना प्रयत्न ही नहीं करता। वह तो यह भी करेगा कि मरे हुए मनुष्य को जिन्दा कैसे किया जाय या बाहरी पदार्थों द्वारा मनुष्य कैसे गढ़ा जाय। इस प्रकार असफल प्रयोगों को करते-करते थोड़ी सफलता भी मिल जाती है और इसी थोड़ी सफलता में दुनिया का काम बन जाता है।

मुक्ति हमारे हाथ में : यह भी संकुचित विचार

आत्मज्ञान का क्या ध्येय है? हिन्दुस्तान के आत्मज्ञान का ध्येय बहुत ही छोटा है। माया-मोह, पाप-पुण्य हो या न हो, कैसी भी परिस्थिति हो, संतोष से रहना है। बाहरी सुख-दुःख से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। पूछा जाय कि इतना दुःख है फिर भी शान्ति कैसे? तो कहते हैं 'ईश्वर की लीला ही ऐसी है।' वे मानते हैं कि मुक्ति उनके नजदीक है। एक भाई ने मुझे लिखा था कि कैसी माया में कैसे अहंकार में पड़े हो? भला ऐसे भी दुनिया का उद्धार होगा? ऐसे काम को छोड़ दो। लेकिन सवाल है कि फिर करें क्या?

उनकी गुरु एक स्त्री थी जिनसे सात साल पहले मेरी मुलाकात हुई थी। वह बहुत शान्त और बड़ी साध्वी थीं। उस भाई ने मुझे लिखा 'तुम उस स्त्री की शरण आओ। वह देवता परादेवता है। मैंने पूछा 'वहाँ क्या करना होगा?' उन्होंने लिखा: 'सवाल पूछते हो? ऐसा सवाल पूछना ही अज्ञान है यही अहंकार है। करना

करना क्या है ! यहाँ आकर बैठ जाओ परम शान्ति मिलेगी। यह कितना सुन्दर पत्र लिखा ! इस प्रकार हिन्दुस्तान के लोग मुक्ति को नजदीक देखते और कहते हैं कि हमें आत्मज्ञान हासिल हो गया। सिर्फ गांधी ही ऐसा आदमी निकला जो आखिर तक कहता रहा कि मुझे ज्ञान नहीं हुआ है। जैसे विज्ञान के सामने असम्भव व्यंग है, वैसे ही आत्मज्ञान के सामने भी होना चाहिए। जैसे विज्ञान कुछ ब्रह्माण्ड पर स्वामित्व चाहता है वैसे ही हमें भी कुछ आत्मशक्ति पर प्रभुत्व हासिल करने की चाह रखनी चाहिए।

आज का अधूरा आत्मज्ञान

हमने धर्म-साहित्य का जो कुछ अध्ययन किया है उस पर से यही समझ पाये हैं कि अभी तक मानव-समाज को आत्मज्ञान का छोटा-सा अंश ही हासिल हुआ है। हमारे सामने किसी आदमी को बिच्छू काटता है तो ज्यादा से ज्यादा हममें थोड़ी-सी करुणा पैदा होती है। यदि आत्मज्ञान हुआ हो : 'मैं और यह एक हैं' यह आत्मानुभूति हुई हो तो उसे जो वेदना हुई, वही हमें भी होनी चाहिए। इसके बजाय अगर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं, शान्त हैं तो जिसे बिच्छू ने काटा है उसे भी शान्ति और आनन्द पहुँचना चाहिए। दोनों में से एक तो होना ही चाहिए—बिच्छू का डंक हमारे शरीर पर उभर आये या हमारे आनन्द और शान्ति का भाव बिच्छू काटनेवाले के पास पहुँच जाय। अभी हमें इतना व्यापक आत्मज्ञान नहीं हुआ है। एक अंशमात्र हुआ है। इसीलिए हमारे अन्दर थोड़ी-सी करुणामात्र पैदा होती है।

यदि हमारे सामने बैठे सभी लोग एकरूप ही हैं तो फिर ग्रामदान होना क्या मुश्किल है ? जहाँ प्रमुख समाज हो, वहाँ उसे प्राप्त करने में क्या कष्ट है ? लालटेन लाते ही अन्धकार खतम हो जाता है। ठीक ऐसे ही जहाँ लोग बेवकूफ बनकर भर रहे हों एक-दूसरे के सिर काट रहे हों अगर वहाँ कोई आत्मज्ञानी पहुँच जाय, तो

कहना खतम हो जाना चाहिए। यह हो भी सकता है, लेकिन अभी आत्मज्ञान का इतना विस्तार नहीं हो पाया है।

असंभव कल्पना से उत्साह-वृद्धि

मानव को सामाजिक समाधि का अनुभव आये। रामकृष्ण परमहंस को सबसे पहले जिस स्थान पर समाधि लगी, वह स्थान बंगाल में है। वहाँ पहुँचने पर हमने अपने व्याख्यान में कहा कि 'जो समाधि रामकृष्ण परमहंस को व्यक्तिगत रूप में हासिल हुई, वह आपको सामाजिक समाधि के रूप में प्राप्त होनी चाहिए।' यह बिलकुल असंभव कार्यक्रम है। लेकिन ऐसी असंभव कल्पनाओं से हममें कितना अधिक उत्साह भर जाता है। हमारी रग-रग में यही भावना भरी है।

अरसिकेरी (मैसूर)
८-११-'५७

विचार के आधार पर ही धर्म टिकेगा : २ :

अभी हमने पुरंदरदास का एक भजन सुना है। उसमें वे कहते हैं : 'धर्म की जय है। हिन्दुस्तान के लोग धर्म का नाम खूब लेते हैं। उस पर बहुत श्रद्धा भी रखते हैं लेकिन जय कहीं नहीं दीखती। बीच में थोड़ा धर्म प्रकट हुआ तो स्वराज्य प्राप्त हुआ और जय हुई। जितना धर्म का उदय होगा उतनी ही जय होगी। फिर भी अभी भारत में दुःख, गरीबी, आपत्तियाँ मौजूद हैं। ये जय के लक्षण नहीं कहे जा सकते। यह स्थिति इसलिए है कि जिसे हम सच्चा धर्म कहते हैं उसे हमने अभी समझा ही नहीं है।

धर्म की पुरानी बुनियाद : श्रद्धा

आज हममें धर्म के प्रति श्रद्धा तो है लेकिन वह कैसी है? किसी देवता की पूजा कर ली, आरती उतार ली, फल-फूल चढ़ा दिये—इसी प्रकार की कुछ-न-कुछ श्रद्धा है। इसीलिए गरीब मनुष्य भी कुछ-न-कुछ आधार महसूस कर रहा है। अगर इतना श्रद्धा भी न होती तो देश अत्यन्त दुःखी दिखाई देता। आज दारिद्र्य होने के बावजूद इसी श्रद्धा के कारण लोगों के चेहरों पर रौनक है। यहाँ दुःखी भी हँसते हैं। यदि परमेश्वर में मौलिक श्रद्धा न होती, तो न जाने हमारी क्या हालत हो जाती!

इस तरह स्पष्ट है कि यह तो केवल बुनियाद ही है। अभी धर्म का मकान बनाना बाकी है। बुनियाद बना लें और मकान ही न बनायें तो क्या रहने के लिए वह बुनियाद काम आयेगी? उसके ऊपर मकान बनेगा तभी हम रह सकेंगे। इसी तरह हमारी ईश्वर पर श्रद्धा है, हम उसकी आरती-पूजा करते हैं, हरिनाम लेते हैं—यह धर्म की बुनियाद है। इतने से धर्म का मकान नहीं बनता। जब धर्म का [illegible] सकेंगे।

अब तक के यत्न विफल

धर्म क्या है ? हमें मानव-धर्म का मकान बनाना है। हिन्दू ईसाई मुसलमान सबके लिए मानव-धर्म एक ही है। इस तरह के मानव-धर्म का मकान बनाने की कोशिश पहले हुई नहीं सो बात नहीं। कोशिशें जरूर हुईं पर मकान पूरा नहीं बन पाया। वह पक्का न बन पाने से बहारों की बारिश होते ही उसकी ईंटें गिर गयीं मिट्टी बह गयी और वह उजड़ गया—लोग उसे छोड़कर चले गये।

यहाँ मैसूर में बसवण्णा वीरशैवों के गुरु थे। ईश्वरभक्ति की बुनियाद पर धर्म का मकान बनाने की उन्होंने शुरुआत की। 'स्त्री-पुरुष का समान अधिकार होना चाहिए, जातिभेद ऊँच-नीचभाव नहीं होना चाहिए, सबको शरीर-श्रम करना चाहिए' यह उन्होंने उपदेश दिया। लेकिन आज वह आचरण में नहीं रहा। बसवण्णा ही नहीं और भी कितनों ने धर्म का मकान बनाने की कोशिशें कीं लेकिन वह गिर गया। फिर भी ईश्वर की कृपा से श्रद्धा की बुनियाद कायम है। इसीलिए हम उसपर फिर से मकान बनाने का काम शुरू कर रहे हैं।

धर्म-मन्दिर की नयी नींव : विचार

लोग कहते हैं : "जिन-जिन लोगों ने यह काम उठाया, वे असफल रहे। उनके बनाये मकान गिर गये। तुम्हारा भी गिर जायगा। हाँ हमारा भी गिर सकता है। लेकिन आशा करेंगे कि नहीं गिरेगा। संभव है हम बनाने की कोशिश करें पर बने नहीं लेकिन अगर बनेगा तो गिरेगा नहीं। पहले हिन्दुस्तान में कुछ लोग खादी पहनते थे। उस समय मिलें नहीं थीं। नंगे नहीं रह सकते इसलिए जैसी-तैसी खादी पहनते थे। लेकिन मिलें आ गयीं और खादी चली गयी। यदि फिर से खादी शुरू करेंगे तो क्या होगा ? सामने मिलें खड़ी हैं। फिर भी विचारपूर्वक खादी पहनेंगे तो क्या यह खादी चली जायगी नहीं कभी नहीं जायगी। कारण पहले खादी की

आंधी थी लेकिन यह विचार की आंधी है। यह विश्व के सामने जमकर टक्कर लेगी।

इसी तरह पहले का ज़माना विज्ञान का नहीं था इसलिए तब जिन्होंने धर्म का मकान बनाया वह श्रद्धा के आधार पर। दूसरी ओर श्रद्धा पर आघात होते ही वह गिर गया। लेकिन अब धर्म का मकान भोलापन और श्रद्धा के आधार पर नहीं विचार के आधार पर बनेगा।

पुरंदरदास का एक भजन है। उसमें वे जिक्र करते हैं: "देखो तुम लोग माता-पिता की आज्ञा न मानोगे तो तुम्हारी चमड़ी खींच ली जायगी। लेकिन कब? 'मरने के बाद'। क्या इस आधार पर धर्म टिक सकेगा? लोग कहेंगे कि हम स्वर्ग-नरक नहीं मानते। फिर ऐसी स्वर्ग-नरक की धमकियों के आधार पर धर्म का मकान कैसे बनेगा? बनेगा भी तो क्या पक्का बनेगा? वह बारिश और तूफान में किस तरह टिकेगा?

धर्म वैज्ञानिक आधार पर कायम करें

यह विज्ञान की बारिश है। विज्ञान प्रयोग और प्रत्यक्ष परीक्षा चाहता है। इसलिए उसमें प्रयोग कर स्वर्ग और नरक को नहीं माना होगा। अब हमें धर्म को वैज्ञानिक आधार पर कायम करना होगा। माता-पिता की आज्ञा न मानोगे तो क्या होगा? हम बच्चों को समझायेंगे: देखो बच्चो! तुम बच्चे हो। अभी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं आयी है। यदि माता-पिता की बात न मानोगे तो उनके अनुभव का लाभ तुम्हें न मिल सकेगा। मूर्ख के मूर्ख ही रह जाओगे। *तुम्हारी उन्नति नहीं होगी। इसलिए माता-पिता की आज्ञा में रहना* चाहिए।" इस तरह समझायें तो उनकी समझ में आ जायगा कि माता-पिता की आज्ञा न मानेंगे तो क्या होगा? इसी तरह हम उन्हें समझायेंगे: "तुमने माता-पिता का प्रेम पाया है। तुम उनसे प्रेम न करोगे तो कौन उनसे प्रेम करेगा? क्या फिर तुम्हारे बच्चे तुमसे प्रेम करेंगे? इसलिए ठीक होगा कि माता-पिता से प्रेम करो।"

अब तक के यत्न विफल

धर्म क्या है ? हमें मानव-धर्म का मकान बनाना है। हिन्दू, ईसाई, मुसलमान सबके लिए मानव-धर्म एक ही है। इस तरह के मानव-धर्म का मकान बनाने की कोशिश पहले हुई नहीं, सो बात नहीं। कोशिशें जरूर हुईं, पर मकान पूरा नहीं बन पाया। वह पक्का न बन पाने से बहारों की बारिश होते ही उसकी ईंटें गिर गयीं, मिट्टी बह गयी और वह उजड़ गया—लोग उसे छोड़कर चल गये।

यहाँ मैसूर में बसवण्णा वीरशैवों के गुरु थे। ईश्वरभक्ति की बुनियाद पर धर्म का मकान बनाने की उन्होंने शुरूआत की। "स्त्री-पुरुष का समान अधिकार होना चाहिए, जातिभेद ऊँच-नीचभाव नहीं होना चाहिए, सबको शरीर-श्रम करना चाहिए" यह उन्होंने उपदेश दिया। लेकिन आज वह आचरण में नहीं रहा। बसवण्णा ही नहीं और भी कितनों ने धर्म का मकान बनाने की कोशिशें कीं, लेकिन वह गिर गया। फिर भी ईश्वर की कृपा एवं श्रद्धा की बुनियाद कायम है। इसलिए हम उस पर फिर से मकान बनाने का काम शुरू कर रहे हैं।

धर्म-मन्दिर की नयी नींव : विचार

लोग कहते हैं : 'भिन्न-भिन्न लोगों ने यह काम उठाया, वे असफल रहे। उनके बनाये मकान गिर गये। तुम्हारा भी गिर जायगा।' हाँ, हमारा भी गिर सकता है। लेकिन आशा करेंगे कि नहीं गिरेगा। संभव है हम बनाने की कोशिश करें, पर बने नहीं, लेकिन अगर बनेगा तो गिरेगा नहीं। पहले हिन्दुस्तान में कुछ लोग खादी पहनते थे। उस समय मिलें नहीं थीं। नंगे नहीं रह सकते, इसलिए जैसी-तैसी खादी पहनते थे। लेकिन मिलें आ गयीं और खादी चली गयी। यदि फिर से खादी शुरू करेंगे तो क्या होगा ? सामने मिलें खड़ी हैं। फिर भी विचारपूर्वक खादी पहनेंगे, तो क्या वह खादी चली जायगी ? नहीं, कभी नहीं जायगी। कारण पहले लाचारी का

आयी थी लेकिन वह विचार की आयी है। वह मिस्र के सामने जमकर टक्कर लेगी।

इसी तरह पहले का जमाना विज्ञान का नहीं था इसलिए तब जिन्होंने धर्म का मकान बनाया वह श्रद्धा के आधार पर। दूसरी ओर श्रद्धा पर आघात होते ही वह गिर गया। लेकिन अब धर्म का मकान भोलापन और श्रद्धा के आधार पर नहीं, विचार के आधार पर बनेगा।

पुरंदरदास का एक भजन है। उसमें वे जिक्र करते हैं: "देखो तुम लोग माता-पिता की आज्ञा न मानोगे तो तुम्हारी चमड़ी खींच ली जायगी।" लेकिन कब? 'मरने के बाद'। क्या इस आधार पर धर्म टिक सकेगा? लोग कहेंगे कि हम स्वर्ग-नरक नहीं मानते। फिर ऐसी स्वर्ग-नरक की धमकियों के आधार पर धर्म का मकान कैसे बनेगा? बनेगा भी तो क्या पक्का बनेगा? वह बारिश और तूफान में किस तरह टिकेगा?

धर्म वैज्ञानिक आधार पर कायम करें

यह विज्ञान की बारिश है। विज्ञान प्रयोग और प्रत्यक्ष परीक्षा चाहता है। इसलिए उसने प्रयोग कर स्वर्ग और नरक को नहीं माना होगा। अब हमें धर्म को वैज्ञानिक आधार पर कायम करना होगा। माता-पिता की आज्ञा न मानोगे तो क्या होगा? हम बच्चों को समझायेंगे: "देखो बच्चो! तुम बच्चे हो। अभी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं आयी है। यदि माता-पिता की बात न मानोगे तो उनके अनुभव का लाभ तुम्हें न मिल सकेगा। मूर्ख के मूर्ख ही रह जाओगे। तुम्हारी उन्नति नहीं होगी। इसलिए माता-पिता की आज्ञा में रहना चाहिए।" इस तरह समझायें तो उनकी समझ में आ जायगा कि माता-पिता की आज्ञा न मानेंगे तो क्या होगा? इसी तरह हम उन्हें समझायेंगे: "तुमने माता-पिता का प्रेम पाया है। तुम उनसे प्रेम न करोगे तो कौन उनसे प्रेम करेगा? क्या फिर तुम्हारे बच्चे तुमसे प्रेम करेंगे? इसलिए ठीक होगा कि माता-पिता से प्रेम करो।"

वैज्ञानिक जमाने के लड़के हमसे पूछेंगे कि 'माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, यह तो हम कबूल करते हैं। लेकिन स्वतंत्र बुद्धि आने के बाद माता-पिता हमसे कोई गलत काम करने के लिए कहें तो क्या हमें उसे भी मानना चाहिए?' उन्हें हम यह जवाब देंगे 'स्वतंत्र बुद्धि आने पर माता-पिता की आज्ञा मानने की जिम्मेवारी तुम पर नहीं रहेगी। लेकिन सेवा करने की जिम्मेवारी है ही। तभी माता-पिता की बात मानो यह धर्म पक्का होगा। तुलसीदास ने भी कहा है :

को जानै, को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को ॥

स्वर्ग में कौन जायगा और यमपुरी में कौन जायगा यह कौन जानता है? इसलिए इसी जीवन में राम का दास होकर रहना तुलसीदास को पसंद है।

प्रत्यक्ष से मेल बैठायें

हमारी कृति का परलोक में फल मिलेगा इस आधार पर वैज्ञानिक युग में धर्म टिक नहीं सकता। हमें उसका नकद फल बताना होगा। 'गुड़ खाओगे तो मरने के बाद मीठा लगेगा' यह कहने से नहीं चलेगा। 'अभी गुड़ खाओ तो अभी मीठा लगेगा।' इसी तरह धर्म का परिणाम इसी लोक में प्रत्यक्ष दिखायें तभी धर्म टिकेगा। विज्ञान के साथ उसका मेल बैठना चाहिए। "सबसे प्रेम करोगे तो सबका प्रेम और सहयोग मिलेगा और वैर करोगे तो वैर बढ़ेगा। प्रेम से सभी आनन्द से रहेंगे। गरीबी दूर होगी सुख से जीवन बीतेगा। प्रेम न करोगे हिंसा करोगे तो मनुष्य गिरेंगे और नष्ट हो जाओगे।' 'आप ग्रामदान देंगे तो स्वर्ग में कुबेर के महल में स्थान मिलेगा' ऐसा हम नहीं कहते। बल्कि यही कहते हैं कि 'ग्रामदान देंगे तो इसी गाँव में और इसी जन्म में आप लोगों को आनन्द का अनुभव होगा।'

मैसूर (मैसूर) ९-११-'५७

मानव-धर्म की स्थापना कैसे हो ? . ४

अपने देश में और शायद दुनिया में भी धर्म के लिए बुनियाद तो बनी हुई है। धर्म की बुनियाद परमेश्वर पर श्रद्धा है और विविध समाजों में वह किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। फिर भी अभी उस पर मकान नहीं बना है। हमें उसपर धर्म का मकान बनाना है जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों को आश्रय मिले।

धर्म अभी बना नहीं

सवाल उठता है कि इतने सारे धर्म तो बन गये हैं, फिर भी धर्म बनना बाकी ही है? लेकिन पचासों धर्म तो हो नहीं सकते। मानव के लिए एक ही धर्म हो सकता है और वह है मानव-धर्म। वह अभी बना नहीं है। बनाने की कोशिश की गयी और थोड़ा बना भी, लेकिन एकदम गिर गया। फिर भी खैर है कि बुनियाद अभी पक्की कायम है—हृदय में श्रद्धा है।

यह बेचारा कायिक धर्म!

एक उदाहरण लें। बसवण्णा स्वामी ने कायिक धर्म बताया 'शरीर-परिश्रम हरएक मनुष्य को करना चाहिए। चाहे वह बड़ा हो चाहे छोटा। फिर भी वह बन नहीं पाया। क्यों नहीं बना? आज भी करोड़ों लोग श्रम करते ही हैं और उस जमाने में भी करते थे। फिर वह कायिक धर्म बनाने की जरूरत ही क्या थी? लेकिन ऐसी बात नहीं। लोग जो श्रम करते थे या करते हैं लाचारी से करते हैं शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा महसूस नहीं करते। फिर, जो शरीर-श्रम नहीं करते वे तो उसकी प्रतिष्ठा मानते ही नहीं। शरीर-श्रम करनेवाला भी उसे नहीं चाहता। किसान रोज श्रम करता है; लेकिन वह चाहता है कि अपने बच्चों को ऐसी तालीम मिले जिससे वे श्रम से बच

जायँ। उन्हें खेती करने की जरूरत न पड़े। वह भी यही समझकर श्रम करता है कि उसे दूसरा कोई चारा नहीं है। इस प्रकार कायिक श्रम रोज चलता है लेकिन लाचारी से। अगर उसे दूसरा कोई उपाय मिल जाय तो वह श्रम करने को राजी न होगा।

जब चाहते हैं कि कायिक श्रम धर्म-विचार हो लेकिन वह कैसे बने? क्या यह कहने से वह धर्म बनेगा कि हम कायिक धर्म का पालन करें—इस लोक में लाभ हो या न हो इसकी परवाह न करें परलोक में अच्छा फल मिलेगा? इस तरह वह कभी नहीं चलेगा। फिर शरीर-श्रम धर्म कब बनेगा? साफ है कि जब शरीर-श्रम को भी उतना ही आर्थिक मूल्य मिलेगा जितना कि दूसरे कामों को मिलता है। इसके पीछे सामाजिक ताकत लगानी चाहिए, इसके अनुकूल समाज बनाना चाहिए। इसका शुभ फल इसी लोक में मिले इसकी योजना होनी चाहिए। तभी यह कायिक धर्म चल पायेगा।

आज एक प्रोफेसर को ५ रुपये तनख्वाह मिलती है। १२ महीनों में ६ महीने छुट्टी रहती है और ६ महीने काम। फिर वह रोज ६ घंटे से ज्यादा काम भी नहीं करता लेकिन उसके काम की कीमत ५ रुपये है याने ६ रुपये सालाना। ६ महीनों में रोज ६ घंटे के हिसाब से ६ घंटे काम और ६ रुपये दाम निकलता है। याने १ घंटे के लिए १ रुपये प्रोफेसर को मिलते हैं। बावजूद इसके किसी मजदूर को जो कायिक श्रम करेगा बहुत हुआ तो एक घंटे का २ आना मिलेगा। कालेज का प्रोफेसर २५ ३ साल नौकरी कर ले तो उसे पेन्शन मिलेगी पर इस कायिक श्रम करनेवाले वर्ग के लिए का कुछ भी नहीं मिलेगा। तब धर्म कैसे बनेगा? इसीलिए हम कहते हैं कि धर्म अभी नहीं बना है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी यहूदी सिख जैन बौद्ध—ये सारी जमातें मौजूद हैं लेकिन मानव-धर्म नहीं बना है।

धर्म के तीन अनिवार्य उपादान

दूसरी मिसाल लें। 'चोरी करना गलत है' यह भी एक धर्म-विचार है। अगर संग्रह पाप नहीं है तो चोरी को पाप कैसे कह सकते हैं? इस प्रकार लोग एकांगी धर्म खड़ा करना चाहते हैं इसीलिए वह चल नहीं पाता। जो संग्रह करता है, उसकी आज प्रतिष्ठा है ही। भले ही वह मरने के बाद नरक में जाय। लेकिन वह गरीब धार्मिक। उसे इस जन्म में प्रतिष्ठा नहीं भले ही मरने के बाद परलोक में इंद्रासन मिल जाय। परलोक के आधार पर धर्म नहीं बनता उसे तो इसी लोक का आधार चाहिए। धर्म एकांगी नहीं पूर्ण होता है—चोरी पाप है तो संग्रह भी पाप है। दोनों विचार मिलकर धर्म बनेगा।

व्यक्ति के लिए एक धर्म हो लेकिन सारे समाज में भी उसकी प्रतिष्ठा होनी चाहिए। समाज की तदनुसार रचना करनी चाहिए। धर्म किसी एक को नहीं बल्कि सबको लागू होता है। वह एक पक्ष पर लागू हो और दूसरे पर नहीं ऐसा नहीं होता। पत्नी मस्तक पर कुंकुम लगावे और गले में मंगलसूत्र धारण कर यह बतावे कि हम पतिव्रता हैं—यह पत्नी की जिम्मेदारी मानी जाती है। लेकिन क्या पुरुष पर पत्नीव्रत की कोई जिम्मेदारी नहीं है? आखिर उसके मस्तक पर ऐसी कोई निशानी क्यों नहीं? हमें तो पता नहीं चलता कि कौन-कौन पत्नीव्रती हैं लेकिन स्त्रियों का पता चल जाता है कि कौन-कौन पतिव्रताएँ हैं। फिर पुरुष भी क्यों न अपने गले में पत्नीव्रत का कोई चिह्न डाल लें? एक ही पक्ष की यह जिम्मेदारी क्यों? इस तरह धर्म नहीं टिकता।

इस तरह हमने धर्म के लिए तीन बातें बतायीं: (१) परलोक के आधार पर धर्म नहीं टिक सकता। (२) धर्म परिपूर्ण होना चाहिए, वह एकांगी नहीं हो सकता और (३) धर्म व्यक्ति के लिए ही पर्याप्त नहीं तदनुसार समाज भी बनाना होगा तभी सारे समाज में उसकी प्रतिष्ठा होगी। ये तीन बातें होंगी, तभी धर्म का मकान बनेगा।

कई बार महापुरुषों ने इसके लिए कोशिशें कीं, लेकिन अभी ये तीनों बातें बनीं नहीं। हमें इन्हें बनाना है। विज्ञान के जमाने में हम यह कर सकते हैं। ध्यान रहे कि अब यदि धर्म न टिकेगा तो हम भी नहीं टिकेंगे।

विज्ञान हाथ आ जाने से आज मानव की बुद्धि तो विशाल हो गयी लेकिन हृदय अब भी छोटा ही है। किसान सोचता है—मेरा खेत मेरा घर। पड़ोसी जरा गाफिल है तो इस साल अपनी हद उसके खेत तक जरा बढ़ा दें, मेरा खेत एक हाथ बढ़ जायगा। आखिर यह क्या है? एक ओर तो चांद पर जाने की बात चल रही है और दूसरी तरफ दूसरे की एक फुट जमीन कैसे मिले, यह सोचते हैं! क्या इस तरह मनुष्य जिंदा रहेगा? इससे तो लड़ाई होगी क्योंकि परस्पर द्वेष बढ़ेगा, झगड़े होंगे। इसलिए हम कहते हैं कि भारत के गाँव-गाँव में ऐक्य रखें, समाज-धर्म की स्थापना करें, मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करें। 'हम सब एक परमेश्वर की संतान हैं' यह एक बड़ी मजबूत बुनियाद मिली है। अब हम मानवता के आधार पर मानव-धर्म की स्थापना करें।

विज्ञान की मदद और धमकी भी

लोग पूछते हैं कि पुराने जमाने के लोगों से जो न सध पाया क्या वह आपसे सधेगा? मैं कहता हूँ, हाँ अवश्य सधेगा। पुराने लोगों की मदद में विज्ञान नहीं था लेकिन इस जमाने में विज्ञान हमारी सहायता के लिए खड़ा है। वह हमें केवल मदद ही नहीं, धमकी भी देता है : 'यदि आप झगड़े-झगड़े करेंगे तो मानव-जाति का खातमा हो जायगा और यदि मिल-जुलकर रहेंगे तो इसी पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा।'

पुराने लोग मरने के बाद स्वर्ग-नरक की बातें करते थे। 'अच्छा अच्छा काम करोगे, मिल-जुलकर रहोगे तो मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। स्वार्थ देखोगे तो नरक में जाओगे'—ऐसा कहते थे।

लेकिन आज विज्ञान कहता है कि 'यदि प्रेम से रहोगे, पुण्य-कार्य करोगे, मिल-जुलकर रहोगे, तो यहीं इसी लोक में स्वर्ग मिलेगा। स्वार्थ देखोगे झगड़े करोगे तो यहीं नरक मिलेगा, यहीं मारे जाओगे। इस तरह विज्ञान प्रत्यक्ष फल दिखाता है।

दस साल पहले हिरोशिमा पर बम गिराया गया था, जिसमें हजारों लोग मरे, करोड़ों जख्मी हुए। किसीका पाँव टूटा तो किसीका हाथ टूटा। सभी अस्पताल में पड़े रहे। यह नरक नहीं, तो क्या है? इसी जन्म में, मरने के बाद नहीं।

अब धर्म की रचना ऐसी होगी, जिसमें पाप-पुण्य का फल प्रत्यक्ष सामने होगा। इस प्रकार हमें नये सिरे से धर्म का मकान बनाना है। आत्मज्ञान की मदद से संतों की तपस्या की मदद से और सबसे बड़ी बात विज्ञान अनुकूल है। अभी तक जो धर्म-विचार नहीं बना वह अब बना सकते हैं। उसके लिए थोड़ा-सा त्याग करना होगा ज्यादा नहीं।

तुरवेकेरे
४-११-'५७

हमें विश्व-मानव बनाना है

हमारा प्रथम कर्तव्य क्या है ? एक दिन पवनार में 'आज़ाद हिन्द-सेना' के एक भाई हमसे मिलने आये थे। आते ही उन्होंने 'जय हिन्द' किया। हमने उत्तर दिया 'जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि'। इस तरह हमने यह सूचित किया कि 'जय हिन्द' में भी खतरा हो सकता है इसलिए 'जय दुनिया' कहना चाहिए और आखिर में परमेश्वर का नाम तो होना ही चाहिए। हमें सोचना है कि हम सर्वप्रथम कौन हैं ? क्या हम सर्वप्रथम कन्नडिगा हैं, फिर भारतीय और उसके बाद मानव या सर्वप्रथम मानव, फिर भारतीय और उसके बाद कन्नडिगा ? उसके पीछे परिवारवाले और उसके पीछे देहगत ? आखिर हम हैं क्या ?

विश्व-नागरिकता : मूल्य-परिवर्तन का अमोघ मन्त्र

यह शिक्षण-शास्त्र का विषय है। पहले जब मैं आश्रम में शिक्षक का काम करता था तो रहता वर्धा जिले में ही था। फिर भी बच्चों से वर्धा जिले की या महाराष्ट्र की ही बात न करता था। बल्कि यही कहता था कि हम इस जगत् के निवासी हैं, विश्व-नागरिक हैं। यह जगत् कितना लंबा-चौड़ा है। आकाश के एक हिस्से में आकाश-गंगा है और दूसरा हिस्सा कोरा ही कोरा है। करोड़ों गोलकों के बीच एक सूर्य है। इतने बड़े गोलकों के सामने यह एक तिनका भी नहीं है। उस सूर्य के इर्द गिर्द हमारी पृथ्वी घूमती है। उस पृथ्वी पर असंख्य (अगणित) प्राणी हैं। वैज्ञानिक २ २५ लाख प्रकार के प्राणी मानते हैं, तो हमारे पुराणों में उनकी ८४ लाख योनियाँ बतायी गयी हैं। यों भी ये करोड़ों, लाखों की ही बात है, हजारों की भी नहीं। इतना मानिये कि उनमें व्यक्ति का कोई हिसाब ही नहीं। उनमें मानव एक छोटा-सा प्राणि है। उस मानव-समाज

यह भारत एक देश है। उसमें एक महाराष्ट्र प्रदेश है। उसके अन्दर वर्धा एक छोटा-सा जिला है। उसके अन्दर यह आश्रम है। उसमें दो खेत हैं और उसके अन्दर हम बिलकुल शून्य हैं। हमारी कोई हस्ती ही नहीं है।

वेदों में तीन मन्त्रों का एक अघमर्षण सूक्त है। उसे जपने से 'अघमर्षण' यानी पाप निरसन होता है। उस सूक्त में कहा है कि 'प्रारम्भ में ऋत और सत्य था; उससे सूर्य चन्द्र आदि सृष्टि हुई, नक्षत्र हुए— बस, इतना हुआ सूक्त। पूछा जा सकता है कि आखिर इस सूक्त के जप का पाप-निवारण से क्या सम्बन्ध है। इसका तात्पर्य यही है कि इसका जपने से इतने विशाल ब्रह्माण्ड की कल्पना मनुष्य के सामने आती है और उसके समक्ष हम कितने छोटे हैं इसका भान होता है; तो अहंकार मिटता है। फिर पाप की प्रेरणा ही नहीं होती।

दूसरी मिसाल देखिये। माँ बच्चे को रोटी खिलाना चाहती है। 'देख कौआ!' पर वह कबूल नहीं करता रोता ही रहता है। फिर माँ कहती है तो बच्चा कौए की ओर देखता है और उसका रोना खतम हो जाता है। आखिर बच्चे ने उस कौए में क्या देखा? यही कि यह मेरा भाई है। उसे एकदम भान हुआ कि यह आत्मा है और मैं भी आत्मा हूँ। यह चेतन है और मैं भी चेतन हूँ। बस वह एकदम उसके साथ एकरूप हो गया और अपना दुःख भूल गया। भारतीयार ने तमिल में एक सुन्दर काव्य लिखा है जिसमें वह कहता है "काके कुरुवि एंगल जाती' यानी कौए का और हमारी एक ही जाति है। इस तरह लगता है कि जब हमारे ध्यान में यह आ जायगा कि हम पहले मानव हैं पीछे मारवाड़ी और पंजाबी कन्नडिगा, तब मूल्य ही बदल जायगा। ये छोटे-छोटे राग-द्वेष और मान अपमान मेरे तो ध्यान में भी नहीं रहते। हम अभी हैं और शायद दो घण्टे के बाद न रहेंगे इस हालत में ये सब क्या चीजें हैं!

ज्ञान के साथ हृदय भी विशाल हो

आज मनुष्य के हाथ में विज्ञान शक्ति आयी है। उसके साथ-साथ अगर उसका दिमाग छोटा रहा, तो मनुष्य के अन्दर में ऐसा विसंवाद पैदा होगा कि उसका व्यक्तित्व ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। पहले के जमाने के बड़े-बड़े सम्राटों को भी दुनिया का भूगोल मालूम नहीं था। अकबर कितना बड़ा सम्राट् था, लेकिन उसका भूगोल का ज्ञान क्या था? जब अंग्रेज यहाँ आये और उसके दरबार में पहुँचे, तब उसे मालूम हुआ कि 'इंग्लैंड' नाम का कोई देश है। किन्तु आज छोटे बच्चे को भी दुनिया के भूगोल का ज्ञान रहता है। इतने विशाल और व्यापक ज्ञान के साथ-साथ अगर चित्त में छोटे-छोटे राग-द्वेष रहें तो हम टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। ज्ञान की इस विशालता के अनुकूल हृदय भी विशाल होना चाहिए। तभी मानव यहाँ स्वर्ग ला सकेगा।

आज जो छोटे-छोटे काम हो रहे हैं वे अच्छा हैं और समाज-क्रांति, समाज के उत्थान का काम अच्छा है। थोड़े-से भूमि-सुधार कर दिये या कहीं शहद या उत्पादन बढ़ाने का काम कर लिया यह तो दुनियाभर में चलता ही है। अमेरिका में काफी उत्पादन होता है, दुनिया की आधी संपत्ति वहाँ है लेकिन अन्तःसमाधान नहीं है। शांति और निर्भयता नहीं है। वहाँ दूसरे देशों से कहीं अधिक आत्महत्याएँ होती हैं और तरह-तरह के पागल मिलते हैं। इसलिए इस बात में कोई मतभेद न होते हुए भी कि हमारे देश में उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है उसके साथ-साथ मानव-हृदय का उत्थान भी आवश्यक है। हमारा जीवन का स्तर तो बढ़ना ही चाहिए क्योंकि आज वह गिरा हुआ है लेकिन साथ ही चिंतन का स्तर भी ऊँचा उठना चाहिए।

ग्रामदान का आनन्द

ग्रामदान भूदान आदि से जमीन का मसला हल होता है यह

तो छोटी बात है। बड़ी बात यह है कि इनसे चिन्तन का स्तर ऊपर उठता है। हमारा सारा गाँव एक परिवार बनेगा। यहाँ की हवा पानी और जमीन—परमेश्वर की सारी देनें सबके लिए होंगी। हम परस्पर सहयोग से काम करेंगे। मैं अपने लिए नहीं समाज के लिए काम करूँगा। सिर्फ अपनी नहीं सारे समाज की चिन्ता करूँगा। ऐसी वृत्ति से सारा नैतिक स्तर बिल्कुल ही बदल जाता है। इसलिए हमें इस आन्दोलन में उत्साह मालूम होता है। हमारी उम्र हो चुकी है फिर भी थकान नहीं मालूम होती क्योंकि अन्दर में एक अद्भुत आनन्द है। हम उसका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते। हम तो निरन्तर अमृतपान कर रहे हैं और उसका थोड़ा-थोड़ा रस सबको पिलाना चाहते हैं।

भूदान-ग्रामदान से नये विश्व का निर्माण

हमें नया मानव बनाना है। पुरानी चीजें खतम हो गयीं। अब तो देशों की हदें भी टिक नहीं पातीं। एक बार आस्ट्रेलिया के एक भाई हमसे मिलने आये थे। उन्होंने पूछा कि दुनिया के लिए भूदान का अर्थ क्या है ? मैंने कहा : 'यही कि आस्ट्रेलिया में काफी जमीन पड़ी है और जापान में कम है इसलिए आपको जापानवालों को आमन्त्रण देना चाहिए। सुनकर बेचारा देखता ही रह गया। उसने कहा : 'हाँ हमारे पास जमीन काफी है लेकिन हम चाहते हैं कि हमारी संस्कृति की रक्षा हो। इसलिए हमारी संस्कृति से मिलत-जुलत यूरोप के लोग आयें तो हम उन्हें लेने के लिए राजी हैं। हमने कहा 'यही खतरा है जिसे खतम करने के लिए भूदान-यज्ञ चल रहा है। जापान की सभ्यता अलग आस्ट्रेलिया यूरोप और हिन्दुस्तान की सभ्यता अलग हिन्दुओं की सभ्यता अलग और मुसलमानों की सभ्यता अलग—ये सारी भेद बातें मिटाने के लिए ही भूदान-यज्ञ है। भूदान में हमारे सामने कोई छोटी बात नहीं। हमें मानव-जीवन बदलना और नया विश्व निर्माण करना है।

यह आध्यात्मिक मूल्य-स्थापना का यत्न

ग्रामदान से भूमि-सुधार होता है भूमि-समस्या हल होती है यह सब तो ठीक है। किन्तु ये सब छोटे परिणाम हैं। दुनियाभर के लोग हमारी भूदान-यात्रा में शामिल होते हैं तो वे यह देखने के लिए नहीं आते कि इससे भूमि-सुधार कैसे होते हैं। वे यहाँ देखने आते हैं कि किस तरह यहाँ आध्यात्मिक मूल्य स्थापित हो रहे हैं। इस वक्त दुनिया हिंसा से बिल्कुल बेजार और हैरान है। सैनिक शक्ति से मसले हल नहीं हो सकते यह निश्चित हो चुका है फिर भी पुराना रवैया ही चल रहा है। हम आध्यात्मिक मूल्य स्थापित करने की बातें करते हैं, लेकिन न सेना कम करते हैं और न पुलिस का कार्य ही सीमित करते हैं। आज की हालत में तो हमारा बोलना बोलना ही रह जायगा। इसलिए हिन्दुस्तान में जनता की ओर से यह प्रयत्न होना चाहिए कि हम नैतिक तरीके पायें। इसीके लिए शान्तिसेना और ग्रामदान है। हम चाहते हैं कि आप लोग इस दृष्टि से इसका अध्ययन करें। हमारा एक ही ध्येय है कि हमें विश्व-मानव बनाना है।

बंगलोर (मैसूर)
१८।१।'५७

श्रीरामानुजाचार्य की कहानी सभी जानते होंगे। उन्होंने अप
गुरु के मन्त्र को जग-जाहिर करने के लिए खुद नरक भोगना स्वीका
किया और देशभर घूमकर उसका खुला उपदेश दिया। तब हमा
यहाँ ब्रह्म-विद्या गुप्त रखने की धारणा प्रचलित थी। वह गलत थी य
मैं नहीं कहता। उसमें भी कुछ सार था। ब्रह्म-विद्या बाजार में बेच
के लिए लाने पर उसका कुछ मूल्य नहीं रहेगा इसलिए उसे गु
रखने में ही मिठास है। लेकिन उसे प्रकट करने की मिठास
निराली है। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव और एकनाथ ने यही किया। चै
हिन्दुस्तान में रामानुज ने ब्रह्म-विद्या के दरवाजे खोल दिये वैसे
महाराष्ट्र में ज्ञानदेव ने भी ब्रह्म-विद्या की सुलभता कर दी। महार
में ज्ञानदेव ने जो महान् पराक्रम किया रामानुज और चैतन्य ने व
देशभर में किया। वे जहाँ-जहाँ गये ज्ञान ही बाँटते गये। स्त्रि
न्हें बच्चों और साधारण जनता—सबको ज्ञान बाँटते गये। इसीलि
ऐसी आम भावना है कि चैतन्य भगवान् कृष्ण के अवतार हैं, क्यों
उनमें प्रेम साकार उतरा हुआ था। मैं कहना यह चाहता हूँ कि
जो प्रेम का धर्म सन्तों ने हमें सिखलाया हमें अब उसे ही आ
बढ़ाना है। वह उस काल की जिन मर्यादाओं से बँध गया था
आज नहीं रहीं। इसीलिए आज हम दो कदम आगे बढ़ सकेंगे-
सन्तों द्वारा सिखलाये ज्ञान को पहचानेंगे उसे नया रूप देंगे और स
दुनिया के सामने रखेंगे। यह इच्छा इस युग के अनुकूल ही है।
वैदिक धर्म को नया रूप प्राप्त होनेवाला है।

भक्ति सर्वोदय में रूपान्तरित होगी।

अब भक्ति का रूपान्तर सर्वोदय में होगा। 'सम सर्वेषु भूत
इस भक्ति को अब 'परा भक्ति' नहीं रहना है 'सामान्य भक्ति

बनाना है। पहले किसी एक को ही समाधि में यह अनुभव होता था कि 'भूतमात्र मेरे सखा हैं, सारे भेद मिथ्या हैं' ये मिटने चाहिए। किन्तु आज यही अनुभव सबको होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, आज सामाजिक समाधि लगनी चाहिए। परमात्मा मेरे मुँह से बहुत बड़ी बातें कहलवा रहा है। तीन साल पहले बंगाल की यात्रा में मैं एक ऐसी जगह पहुँचा जहाँ रामकृष्ण परमहंस को पहली समाधि लगी थी। तालाब के किनारे उसी जगह बैठकर मैंने कहा था कि 'रामकृष्ण को जो समाधि लगी थी उसे अब हमें सामाजिक बनाना है।' यह भी ज्ञानदेव ने कह दिया है: 'भुक्तिवे वैभव अन्य नाहीं दूजे।' इस प्रकार का अनुभव सबको होना चाहिए।

साम्ययोग : पहले शिखर, अब नींव

विज्ञान के युग में साम्ययोग भी सिर्फ समाधि में अनुभव करने की चीज नहीं रही बल्कि सारे समाज में अनुभव करने की बात बन गयी है। साम्ययोग पहले 'शिखर' था पर अब 'नींव' बन गया है। अब हमें साम्ययोग के आधार पर अपना जीवन खड़ा करना होगा। यही विज्ञान-युग की माँग और आवश्यकता है। इसीलिए आज हम जैसे साधारण लोगों को भी ऐसे काम करने की प्रेरणा हो रही है।

सर्वश्रेष्ठ भक्त का लक्षण : पूर्ण निर्भयता

भक्ति का मूल मन्त्र देनेवाला प्रह्लाद है। नारद उसका गुरु है फिर भी महाभक्तों की सूची में प्रह्लाद का नाम पहले आता है और नारद का सबके बाद। जब भयानक रूप धारण कर नरसिंहावतार प्रकट हुआ तो भगवान् की चिर-परिचित लक्ष्मी घबरा उठी; नारद की भी वाणी। क्षणभर रुकना नहीं था वह रुक गयी और वह भी घबरा उठा। फिर भी प्रह्लाद निर्भयता के साथ नरसिंह रूप के सामने खड़ा होकर कहने लगा 'नाहं बिभेमि'—मैं तुमसे नहीं डरता। उसने भगवान् के रूप के समक्ष यह जो निर्भयता दिखलायी उसी कारण वह सर्वश्रेष्ठ भक्त माना गया। दुष्ट रूप के सामने बहुतों ने निर्भयता दिख

दुनिया को बनानेवाली तीन ताकतें ७.

साहित्य से मुझे हमेशा बहुत उत्साह होता है। साहित्य-देवता के लिए मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है। एक पुरानी बात याद आ रही है। बचपन में करीब १० साल तक मेरा जीवन एक छोटे-से देहात में ही बीता। बाद के १० साल बड़ौदा जैसे बड़े शहर में बीते। जब मैं कोंकण के देहात में था, तब पिताजी कुछ अध्ययन और काम के लिए बड़ौदा रहते थे। दिवाली के दिनों में अक्सर घर पर आया करते थे। एक बार माँ ने कहा : 'आज तेरे पिताजी आनेवाले हैं, तेरे लिए मेवा-मिठाई लायेंगे।' पिताजी आये। फौरन मैं उनके पास पहुँचा और उन्होंने अपना मेवा मेरे हाथ में थमा दिया। मेवे को हम कुछ गोल-गोल लड्डू ही समझते थे। लेकिन वह मेवे का पैकेट गोल न होकर चिपटा-सा था। मुझे लगा कि कोई खास तरह की मिठाई होगी। खोलकर देखा तो दो किताबें थीं। उन्हें लेकर मैं माँ के पास पहुँचा और उसके सामने धर दिया। माँ बोली : 'बेटा! तेरे पिताजी ने तुझे आज जो मिठाई दी है, उससे बढ़कर कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।' वे किताबें रामायण और भागवत की कहानियों की थीं, यह मुझे याद है। आज तक वे किताबें मैंने कई बार पढ़ीं। माँ का यह वाक्य मैं कभी नहीं भूला कि 'इससे बढ़कर कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।' इस वाक्य ने मुझे इतना पकड़ रखा है कि आज भी कोई मिठाई मुझे इतनी मीठी मालूम नहीं होती, जितनी कोई सुन्दर विचार की पुस्तक।

साहित्य : कठोरतम साधना की सिद्धि

वैसे तो भगवान् की अनन्त शक्तियाँ हैं, पर साहित्य में उन शक्तियों की केवल एक ही कला प्रकट हुई है। भगवान् की शक्ति की वह कला कवियों और साहित्यिकों को प्रेरित करती है। कवि और

शाहिस्पिक ही उस शक्ति को जानते हैं। दूसरों को उसका दर्शन नहीं हो पाता। मुहम्मद पैगम्बर के लिए कहा गया है कि वे समाधि में लीन होते तो पसीना-पसीना हो जाते। उनके नजदीक के लोग एकदम घबरा उठते कि यह कितना भार उन पर पड़ रहा है। कितनी तकलीफ हो रही होगी! लेकिन वह चीज 'वही' थी, जिसे अरबी में 'वही' कहते हैं। वही माने पुस्तक या किताब नहीं। 'वही' उस चीज को कहते हैं जो परमेश्वर का सन्देश मनुष्य के पास पहुँचाती है। जब वह परमेश्वर का सन्देश मनुष्य के हृदय पर सवार होता है तब बहुत ही यन्त्रणा (टार्चर) तीव्र वेदना होती है जिसकी उपमा प्रसूति-वेदना से दे सकते हैं। प्रसूति में बहनों को जो वेदना होती है, उससे यह वेदना बहुत ज्यादा है। यह तो मैं अपने अनुभव से ही कह सकता हूँ कि कुछ ऐसा महसूस होता है कि हम अपने को बिलकुल खो रहे हैं। कोई चीज हम पर हावी हो रही है। ऐसी कोई चीज जिसे हम टाल नहीं सकते टालना चाहते हैं। लगता है कि टले तो अच्छा है। लेकिन वह टल नहीं पाती, टाली नहीं जा सकती। ऐसी वेदना के अन्त में जो दर्शन होता है वही लोगों को जानने को मिलता है। यह वेदना लोगों को मालूम नहीं होती, उसे तो कवि और शाहिस्पिक ही जानते हैं।

कवि की व्याख्या

मेरे अर्थ में 'कवि' शब्द दो-चार कड़ियाँ तुकबंदियाँ जोड़ देने वाला नहीं है। कवि क्रान्तदर्शी होता है। जिसे उस पार का दर्शन होता है वही कवि है। इस पार देखनेवाली तो ये दो आँखें हैं। इनका हम पर बड़ा उपकार है ही। ये रंगी-रंगीली सारी दुनिया हमारे सामने पेश करती हैं, दुनिया की रौनक दिखाती हैं। सृष्टि का सौन्दर्य हम इन्हीं दो आँखों से ग्रहण करते हैं। लेकिन ये गुनहगार भी हैं। हम दो आँखों में एक ऐसी चीज भी है जो इनका पर्दा छीन जाती है। इस खूबसूरत दुनिया से और भी निहायत खूबसूरत

एक दुनिया है जिसे ये दो आँखें छिपा रखती हैं। इन आँखों की वहाँ पहुँच नहीं। इनके कारण मानव उस दुनिया की ओर आकृष्ट नहीं होता। लेकिन जब तीसरी आँख खुल जाती है तो इस दुनिया का दर्शन होता है। दुनिया के सर्वसाधारण व्यवहारों के पीछे, उनके अंदर और उनकी तह में जो ताकतें काम करती हैं उनका दर्शन होता है। उसमें से काव्य-स्फूर्ति होती है साहित्य की स्फूर्ति होती है। इसीलिए मेरी साहित्यिकों पर बहुत श्रद्धा है।

दुनिया को बनानेवाली ताकतें

मुझसे पूछा जाता है कि परमेश्वर के अलावा इस दुनिया को बनानेवाले और कौन-कौन हैं। कोई समझते हैं कि राजनैतिक पुरुषों ने दुनिया बनायी। बड़े-बड़े इतिहास लिखे जाते हैं कि बाबर आया और उसने फलाँ-फलाँ काम किया। अकबर आया उसने यह किया वह किया। इतिहास के नाम से ये कहानियाँ पढ़ी जाती हैं। स्कूलों में बच्चों से रटायी जाती हैं। लेकिन आज समाज-जीवन में बाबर का कोई पता अकबर का कोई हिसाब है? ये दुनिया के बनानेवाले नहीं हो सकते। दुनिया को बनानेवाली तो तीन ताकतें हैं: विज्ञान आत्म-ज्ञान और साहित्य।

विज्ञान की शक्ति

वैज्ञानिक दुनिया के जीवन को रूप देता है। आज मेरे सामने यह लाउडस्पीकर खड़ा है इसलिए शान्ति से सब सुन रहे हैं। अगर यह न होता तो मेरी आवाज इतने लोगों तक नहीं पहुँच पाती। मुझे दर्शन और प्रणाम कर लोगों को चला जाना पड़ता या मुझे ही छोटी जमात में बोलना पड़ता। आज तो इतनी ही जमात शान्ति से सुन रही है। लेकिन इससे दसगुनी होती तो भी सुन सकती। इसकी कल्पना पहले के लोगों को हो ही नहीं सकती थी।

विज्ञान से न केवल जीवन में स्थूल-परिवर्तन होता है बल्कि मानसिक परिवर्तन भी होता है। प्रिंटिंग प्रेस (छापाखाने) के कारण

विज्ञान का कितनी आसानी से प्रचार हो सकता है इसका कोई कयास हमारे पूर्वजों को नहीं रहा होगा। उससे गलत बातों का भी प्रचार हो सकता है यह अलग बात है। लेकिन जीवन को बदलनेवाली चीजें विज्ञान से पैदा होती हैं और वैज्ञानिकों ने जीवन को आकार दिया है इसमें कोई शक नहीं। अग्नि की खोज के बाद सारे ऋषिगण मुक्तिभाव से अग्नि के गीत गाने लगे। वे गीत वेदों में आते हैं। अब शायद अणुशक्ति के गीत गानेवाले ऋषिगण पैदा होंगे। आज तो वह संहार करने के लिए आयी है संहारक के रूप में ही हमारे सामने खड़ी है। लेकिन उसका शिव रूप भी है, केवल रुद्र रूप ही नहीं। जब वह शिव रूप में प्रकट होगी, तब दुनिया का जीवन ही बदल देगी।

आत्मज्ञान की सामर्थ्य

दूसरी ताकत जो जीवन को आकार देती है वह है आत्मज्ञान। आत्मज्ञानी दुनिया में जहाँ जहाँ पैदा हुए, उनकी बदौलत पूरा-का-पूरा जीवन बदल गया। ईसामसीह आये गौतम बुद्ध आये, रामानुज आये, मुहम्मद पैगम्बर आये नामदेव आये, तुलसीदास आये माणिक्य वाचकर आये जगह-जगह ऐसे महात्मा आये। ऐसे एक-एक सन्त के आगमन से लोगों के जीवन का स्वरूप बदल गया। लोगों के जीवन का स्वरूप बदलनेवाली यह दूसरी ताकत है।

साहित्य की शक्ति

दुनिया को बनानेवाली तीसरी ताकत है साहित्य। वाल्मीकि आये। व्यास आये। दांते आये। होमर आये। शेक्सपियर आये। रवीन्द्रनाथ आये। ऐसे संत दुनिया में आये और दुनिया को ऐसी चीज दे गये, जो सदा के लिए जीवन का समृद्ध बना दे। दुनिया को उन्होंने ऐसी विचार-शक्ति दी जिससे दुनिया का जीवन बदल गया। दुनिया को शान्ति की जरूरत हुई तो शान्ति का विचार दिया। उत्साह की जरूरत हुई उत्साह दिया। आशा की जरूरत हुई, आशा

थी। जिस समय समाज को जिस चीज की जरूरत थी वह चीज उन्होंने समाज को दी। दुनिया में जो बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ हुई, उनके पीछे ऐसे विचारकों के विचार ही थे। ऐसे साहित्यिकों का साहित्य था जिन्होंने पारदर्शन किया था।

वाणी : विज्ञान आत्मज्ञान के बीच का पुल

इन तीन ताकतों ने आज तक दुनिया बनायी। इसके आगे भी जीवन के ढाँचे को स्वतन्त्र रूप देनेवाली ये ही तीन ताकतें हो सकती हैं : विज्ञान आत्मज्ञान और साहित्य या वाक्शक्ति जिसे 'वाणी' भी कहते हैं। विज्ञान से जीवन का स्थूल रूप बदलता है और वह मनुष्य के मन पर असर करनेवाली परिस्थितियाँ पैदा कर देता है। लेकिन वह सीधे मन पर असर नहीं करता। वाणी विज्ञान से आगे जाकर हृदय पर ही सीधा प्रहार करती है। वह हृदय तक पहुँच जाती है। फिर आत्मज्ञान अन्दर प्रकाश डालता है। विज्ञान बाहर से प्रकाश डालता है तो आत्मज्ञान भीतर से प्रकाश करता है। इन दोनों के बीच वाणी पुल का काम करती है। वह दोनों किनारों का संयोग कराती और दोनों तरफ रोशनी डालती है। तुलसीदासजी कहते हैं :

> "राम-नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
> तुलसी भीतर बाहिर हूँ जो चाहसि उजियार॥"

'अगर तू अन्दर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है प्रकाश चाहता है तो वह रामनामरूपी मणिदीप जिह्वारूपी देहली-द्वार पर रख दे। इस द्वार पर दिया जलाते ही बाहर और भीतर दोनों तरफ प्रकाश फैल जाता है। इतना अधिक उपकार वाणी करती है। मनुष्य को भगवान की यह अप्रतिम देन है।

वाणी का सदुपयोग हो

वाणी की यह देन मनुष्य की बड़ी भारी शक्ति है। इस शक्ति का जहाँ दुरुपयोग होता है वहाँ समाज गिरता है और जहाँ उसका सदुपयोग होता है वहाँ समाज आगे बढ़ता है। ऋग्वेद में कहा गया है :

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।"

जैसे हम अनाज छानते हैं, तो उसमें से ठोस चीज ले लेते हैं और ऊपर का छिलका कचरा फेंक देते हैं। वैसे ही जिस समाज में वाणी की छानबीन होती है ज्ञानी पुरुष मननपूर्वक वाणी की छानबीन करते हैं और उत्तम पावन पवित्र शुद्ध निर्मल स्वच्छ, सात्त्विक शब्द ढूँढ निकालते हैं, उस शब्द का प्रयोग करते हैं उस समाज में लक्ष्मी रहती है।

बहुतों का खयाल है कि सरस्वती और लक्ष्मी का विरोध है, लेकिन ऋग्वेद में इससे बिलकुल उलटी बात कही है। यह कहना कितने अज्ञान की बात है कि लक्ष्मी और सरस्वती का वैर है। वाणी तो संयोजन-शक्ति है। वह तो अन्दर की दुनिया और बाहर की दुनिया को, आत्मज्ञान और विज्ञान को जोड़नेवाली कड़ी है। दुनिया में जितनी शक्तियाँ मौजूद हैं उन सब शक्तियों को जोड़नेवाली अगर कोई कड़ी है, तो वह वाणी ही है। फिर उसका किसीके साथ वैर कैसे हो सकता है! वाणी सूक्ष्म-शक्ति है। इसलिए उसके भीतर दूसरी शक्तियाँ छिपी रहती हैं। मेरा तो वाणी पर बहुत भरोसा है। निरन्तर बोलता ही रहता हूँ, सुनता भी जाता हूँ। इसीमें वाणी की महिमा है। श्रवण और कीर्तन दोनों मिलकर वाणी बनती है।

मैं 'प्रकाश' चाहता हूँ

आप साहित्यिकों से मैं अपने विचारों का प्रकाश चाहता हूँ। यह बिलकुल स्वतन्त्र शब्द है हमारे हिन्दुस्तान का खास शब्द है। अंग्रेजी में एक शब्द है 'प्रोपेगेंडा' जो बिलकुल ऊपर-ऊपर की चीज है। इसी तरह का दूसरा शब्द है 'पब्लिसिटी'। लेकिन मैं न तो 'प्रोपेगेंडा' चाहता हूँ और न 'पब्लिसिटी' ही, मैं प्रकाश चाहता हूँ। मैं यह नहीं चाहता कि लोगों के सामने हमारे काम की बढ़ा-चढ़ाकर तारीफ की जाय। मैं यह भी नहीं चाहता कि हमारे काम की हर छोटी-बड़ी चीज बार-बार सर्वत्र बतलायी जाय। लेकिन इस कार्य के पीछे जो विचार

हैं—जो बहुत ही मजबूत गहरे और व्यापक हैं—उनका प्रकाश हम अपने व्यवहार और प्रयोगों से बढ़ायें। शुद्ध विचार लोगों को समझायें। इस वक्त हमें अधिक-से-अधिक गहरे, व्यापक और मजबूत विचार उपलब्ध हुए हैं। हमारे बाद जो लोग आयेंगे उन्हें इससे भी अधिक मजबूत गहरे और व्यापक विचार उपलब्ध हो सकेंगे। फिर भी हमें जो विचार उपलब्ध हुए हैं वे विश्वव्यापक विचार हैं। आत्मा की गहराई तक जानेवाले विचार हैं। आज तक के दार्शनिक और सन्त जितनी गहराई तक गये उससे अधिक गहराई में हमें उतरना होगा। तभी सर्वोदय-विचार का यथार्थ दर्शन हो सकेगा।

साहित्यिक सर्वथा स्वतन्त्र

जो प्रामाणिक वैज्ञानिक और स्वतन्त्र साहित्यिक है, वह आत्मज्ञानी की तरह अत्यन्त स्वाधीन होता है। वह कभी अपने को बेच नहीं सकता। दुनिया चाहे उसकी माने या न माने, इसकी वह परवाह नहीं करता। वह इस विषय में अत्यन्त सुरक्षित मनुष्य है। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है :

'स वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो'

यह वाग्विसर्ग—यह भागवत की भाषा है—जनता का अघविप्लव होगा। यानी जो वाङ्मय जनता के पापों को धोनेवाला होगा, वही 'साहित्य' कहलायेगा। जनता के पापों को जो शब्द धोयेगा वही सारस्वत होगा। बाकी सारा वाङ्मय ही रहेगा। साहित्य का अर्थ है जीवन के सहित सतत ठहरनेवाली वस्तु। जिन्दगी का जो सम्बल है वही साहित्य है। वह आपको निरन्तर अपने साथ रखने योग्य मालूम होगा।

पंढरपुर (महाराष्ट्र)

१-५-'५७

बेलवाल में आयोजित ऐतिहासिक ग्रामदान-परिषद् में सारे भारत के विभिन्न विचारवादी आये और दो दिनों तक चर्चा करने के बाद उन्होंने देश को एक संहिता दी। उस संहिता में दो शब्द हैं, जो हमारे लिए द्विविध आशीर्वाद हैं। उसमें उन्होंने लिखा है : 'विनोबा ने सामाजिक मसले हल करने के लिए जो अहिंसात्मक और सहयोगी पद्धति अपनायी है वह हमें मान्य है।' इस तरह उन्होंने हमारे काम में दो चीजें देखीं। एक यह कि इसकी पद्धति अहिंसात्मक है जो प्राचीन आशीर्वाद है और दूसरी यह कि यह सहयोगी पद्धति है जो आधुनिक आशीर्वाद है।

सर्वोदय-विचार आध्यात्मिक और वैज्ञानिक

अहिंसात्मक और सहयोगी ये दोनों पद्धतियाँ हमारे सर्वोदय के कार्य में जुड़ जाती हैं। अहिंसात्मक पद्धति आत्मा की एकता के अनुभव पर आधारित है। यह आध्यात्मिक विचार है; और सहयोगी पद्धति विज्ञान पर आधारित है। इस तरह आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों का योग सर्वोदय में हुआ है। इसीलिए यह नेताओं को मान्य हुआ। सर्वोदय का विचार आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों मिलकर बनता है। कुछ लोग समझते हैं कि 'सर्वोदय' का अर्थ दकियानूस है किसी तरह के वैज्ञानिक शोधों की कीमत ही नहीं समझते मिल की अपेक्षा चरखे को पसन्द करेंगे चरखे की अपेक्षा तकली को पसन्द करेंगे लोहे की तकली की अपेक्षा लकड़ी की तकली को पसन्द करेंगे। और अगर कोई उससे भी आगे बढ़कर हाथ से ही सूत काते तो उसे वे सबसे अधिक पसन्द करेंगे। सर्वोदय की आध्यात्मिकता के विषय में तो किसीको शक नहीं था; किन्तु इसकी वैज्ञा-

निष्ठा के बारे में सन्देह अवश्य था। अब दोनों विषयों में निस्संदिग्धता हो गयी और हमें द्विविध आशीर्वाद मिले हैं।

लाओत्से की योजना केवल अहिंसात्मक

वैज्ञानिकता के अभाव में अहिंसात्मक आध्यात्मिक योजना कैसे होगी, इसके लिए हम एक मिसाल देते हैं। चीन में लाओत्से नामक एक दार्शनिक हो गये हैं। उन्होंने आदर्श ग्राम की कल्पना बतायी है कि ऐसे ग्राम में कुल चीजों में स्वावलम्बन होता है, बाहर से कोई भी चीज लाने की जरूरत नहीं पड़ती। गाँववाले गाँव से सभी प्रकार से परितुष्ट रहते हैं। लेकिन रात में दूर से उन्हें कुत्तों की आवाज सुनाई देती है, इसलिए वे अनुमान करते हैं कि नजदीक में जरूर ही कोई गाँव होना चाहिए। यही है वैज्ञानिकता के अभाव में अहिंसात्मक योजना। इसमें कोई गाँव किसी गाँव की हिंसा नहीं करता। किसी गाँववाले दूसरे किसी गाँववालों से मिलने नहीं जाते। सम्पर्क की कोई जरूरत ही नहीं मानते। जब हम सर्वोदय की बात करते थे, यहाँ के नेता समझते थे कि ये लोग शायद करके लाओत्सेवाली योजना करना चाहते हैं।

स्तालिन की योजना : केवल उपयोगी

अब आध्यात्मिकता के अभाव में—अहिंसा के अभाव में—वैज्ञानिक योजना कैसी होती है यह देखिये। उसके लिए रूस का उदाहरण लें। वहाँ सब खेती इकट्ठी कर दी गयी है। किसीसे पूछा तक नहीं जाता कि तुम इसके लिए राजी हो या नहीं? खेती के बारे में किसानों से कभी सलाह नहीं ली जाती। इसी तरह वहाँ साधारण जनता का योजना बनाने में कोई हाथ नहीं। योजना सरकार ही बनायेगी और तदनुसार सबको काम करना पड़ेगा। सैनिकों का धर्म है पूरा काम करना और व्यवस्थापकों का काम है सैनिकों का पेटभर खिलाना। इस योजना में खाना-कपड़ा सबको मिलेगा। भौतिक आवश्यकताओं की

कमी नहीं होगी। लेकिन कोई आपका दमन न करेगा, आपको अपने विचारों को आचार में उतारने की आजादी नहीं रहेगी।

सर्वोदय में दोनों का समन्वय

इस तरह सार्वभौमवादी योजना और स्वावलम्बी योजना दोनों ही योजनाएँ आपके सामने रखी हैं। सार्वभौम की योजना पर 'अहिंसा-त्मक' विशेषण लागू होता है तो स्वावलम्बन की पद्धति पर 'सहयोगी' शब्द लगता है। लेकिन सर्वोदय में दोनों का समन्वय हुआ है। यह 'अहिंसात्मक और सहयोगी' कही गयी है और इसलिए इस ढंग से कभी विभिन्न विचारकों का आशीर्वाद प्राप्त हो गया है।

मैसूर

११-९-५७

यह आन्दोलन जितना गहरा जा रहा है, उतना ही कार्यकर्ताओं का स्तर भी ऊँचा उठना चाहिए। आध्यात्मिक चिन्तन में गहरा प्रवेश होना चाहिए। मनोमालिन्य मिटाकर शुद्ध करने की यह सारी प्रक्रिया है।

मन गौण : विज्ञान-आत्मज्ञान की दृष्टि में

बापू की आदत थी कि किन्हीं दो मनुष्यों के बीच झगड़ा होने पर दोनों को पास बुलाते और उनके स्तर पर उतरकर बातें करते थे। इसमें कहीं वे सफल हुए और कहीं नहीं भी। यह भी एक तरीका है पर वह समग्र नहीं। वह व्यक्तिगत तरीका है और विज्ञान के युग के लिए ऐसा व्यक्तिगत तरीका समर्थ नहीं हो सकता। वह मानसिक युग का तरीका है। आज विज्ञान का युग आ रहा है। उसमें 'आब्जेक्टिव' सत्यप्रधान है। किसके मन में क्या है इसका कोई महत्त्व नहीं। विज्ञान सृष्टि के सामने मन को गौण समझता है और आत्मज्ञान भी उसे गौण ही मानता है। दोनों मन को गौण मानते हैं। आध्यात्मिकता कहती है कि मन को उन्मन बनना चाहिए। विज्ञान भी यही कहता है। ऐसी स्थिति में किसीमें मनोमालिन्य आ जाय तो क्या करना चाहिए? कहना होगा कि उस स्थिति में उपेक्षा से ही काम चलेगा। अभी हममें उपेक्षा की शक्ति पर्याप्त नहीं है। मन की भूमिका से ऊपर उठकर सोचेंगे तभी काम होगा।

थर्मामीटर का प्रतिमानस-दर्शन

इसलिए [illegible] 'थर्मामीटर' की बात करते थे। उनके मन में [illegible] और [illegible] अमृतत्व में परिणत [illegible] मन उन्मन हो जाता है और उसके बाद वह नीचे

शरीर में तेल नहीं है तो भी इन्द्रियाँ एक-दूसरे से टकराती नहीं। इनकी योजना ही ऐसी है कि घर्षण न हो। यह सारी व्यवस्था होती है। क्योंकि वहाँ प्रेमशक्ति काम करती है। पैर में तकलीफ होती है, तो हाथ तुरत सेवा करने लगता है। शरीर के अन्तर्गत जो प्रेमशक्ति है उसीके कारण शरीर के अवयवों में घर्षण नहीं होता और उनसे अभीष्ट काम लिया जा सकता है। इसी तरह समाज की भी यन्त्र-रचना हो जाय तो फिर तेल की डिब्बी की जरूरत नहीं रहेगी।

अभी मैंने अरविन्द के विचार रखे। ऐसे महान्-महान् लोगों के विचार जानने चाहिए। दुनिया के विचारकों के विषय में हम कुछ न जानें यह ठीक नहीं है। विचारों में नवीनता क्या है लोगों पर उनका क्या असर है उनसे हम क्या ले सकते हैं—यह सब जानना चाहिए।

यह महाकाव्य का जमाना

मैसूर में हमने वहाँ के महाकवि पुट्टप्पाजी* से पूछा कि इस जमाने में आप इतना बड़ा महाकाव्य कैसे लिख सके? उन्होंने जवाब दिया : 'हिन्दुस्तान में आज महाकाव्य का जमाना है। इन ५०-६ सालों में हिन्दुस्तान में इतने महापुरुष हो गये जितने दुनिया में और कहीं नहीं हुए। इसलिए यही महाकाव्य का जमाना है।' इसलिए यह समझना गलत है कि विज्ञान के जमाने में महाकाव्य नहीं लिखा जायगा। विज्ञान के जमाने में सृष्टि का गूढ़ अर्थ प्रकट होगा। पुराने लोगों के सामने सृष्टि का कम रहस्य प्रकट था। तब लोग यह समझते थे कि सृष्टि का जितना ज्ञान प्रकट हुआ वह विज्ञान है। जितना गूढ़ रहा वह काव्य है। परन्तु पुराने जमाने के लोग सृष्टि में कितनी गूढ़ता है यह जानते ही नहीं थे। इसलिए काव्य के लिए गुंजाइश कम थी। जितनी गूढ़ता अधिक प्रकट होगी काव्य के लिए उतना ही

---

* जो पुट्टप्पा कन्नड भाषा के महाकवि हैं जिन्होंने उस भाषा में आधुनिक दृष्टिकोण से रामायण की रचना की है।

अधिक अवसर होगा। पुराने जमाने में सृष्टि कम प्रकट थी और सृष्टि का गूढ़ भी कम प्रकट था। इसलिए विज्ञान भी कम था काव्य भी कम था। इस जमाने में सृष्टि का प्रकाशन भी अधिक है और गूढ़ता का प्रकोशन भी अधिक है। सृष्टि और उसकी गूढ़ता दोनों अधिक प्रकट हुए हैं। इसलिए जैसे विज्ञान की सम्भावना अधिक है, वैसे ही काव्य की भी सम्भावना अधिक है।

पाण्डवपुर

१०-९-'५७

विज्ञान की माँग

मानव एक प्राणी है किन्तु उसमें और अन्य प्राणियों में आज तक कुछ-न-कुछ फर्क रहा है। आखिर वह फर्क क्या है?

मानव और अन्य प्राणियों में अन्तर

दूसरे प्राणी प्राण-प्रधान हैं जब कि मानव मनःप्रधान। वैसे मानव में प्राण हैं और मन भी, किन्तु प्रधान मन ही है। प्राणी हलचल करता है तो खूब जोर से दौड़ता है। वह हमला करेगा तो भी जोर से। उस हमले में मन नहीं प्राण प्रधान है। एक कुत्ता दूसरे कुत्ते पर प्रेम से टूट पड़ता है और द्वेष से भी। प्रेम से टूट पड़े तो सहजभाव से पड़ता है। उसकी प्रेरणा प्राण-प्रेरणा है। प्राणी उत्कटता-पूर्वक हमला करता या टूट पड़ता है—यह सारी प्राण-प्रक्रिया है। इन कामों में उसे चोट आने पर भी उसकी परवाह नहीं करता।

बच्चे भी इसी तरह करते हैं। बचपन में खेलते-खेलते पत्थर फेंक देते हैं। खास किसी चीज पर नहीं फेंकते। फेंकने की वृत्ति हुई, इसलिए फेंक देते हैं। उनका काम एक प्राणवृत्ति है। लेकिन उसका पत्थर किसीको लगता और खून बहता है तो वह एक घटना हो जाती है। उसका मानसिक असर भी होता है क्योंकि बच्चे को भी मन होता है। इस तरह स्पष्ट है कि हमें भी प्राण की प्रेरणा होती है परन्तु वह प्राणप्रधान नहीं मनःप्रधान होती है। छोटे-छोटे जन्तु देखते हैं तरह-तरह की क्रियाएँ हलचल करते हैं। उनमें सूक्ष्म मन नहीं होता ऐसी बात नहीं। फिर भी मुख्य वस्तु प्राण है और मनुष्य में मुख्य वस्तु मन है। भावना वासना कामना प्रेरणा आशा निराशा आदि की जो प्रक्रियाएँ हैं वे सारी मानसिक वृत्तियाँ मनुष्य में काम

करती हैं। डर, हिम्मत अभिमान मानापमान भ्रम, आसक्ति, द्वेष, तिरस्कार, नफरत ये सब मानव की मनोवृत्तियों का खेल है।

विज्ञान मानसशास्त्र नहीं मानता

इस तरह प्राणी की प्राणभूमिका है और मानव की मनोभूमिका। किन्तु अब विज्ञान मानव से कहता है कि तुम्हारी मनोभूमिका नहीं चलेगी। अब तुम्हें विज्ञान-भूमिका पर आना होगा। जाने जिसे हम मानसशास्त्र कहते हैं वह सारा-का-सारा बिलकुल निकम्मा हो जायगा। विज्ञान मानसशास्त्र को नहीं पहचानता। ऊपर से एटम बम गिरता है। वह सोचता ही नहीं कि नीचे जो मनुष्य हैं उनमें कौन गुनहगार हैं और कौन निर्दोष। एटम बम गिरेगा तो मानव पशु, सब खतम हो जायेंगे। मानवों में भी अच्छे-बुरे का कोई फर्क न किया जायगा। बाढ़ आने पर नदी महापुरुष, अल्पपुरुष जानवर या लकड़ी जो भी हो, उसे बहाकर ले जाती है। जैसे नदी मानसशास्त्र से परे है, वैसे ही विज्ञान मानसशास्त्र से परे है।

आज के मानव की वैज्ञानिक प्रगति

जिस अणु से यह सारी दुनिया सारी सृष्टि बनी है वही सारी शक्ति आज मनुष्य के हाथ में आ गयी है। जिस अणु-शक्ति के बिखरने से दुनिया का लय हो सकता है वह शक्ति मनुष्य के हाथ आ गयी है। अणु के साथ अणु जुड़ जाने से सृष्टि बनती है और सारे अणु अलग-अलग होने पर सृष्टि का प्रलय होता है। इस तरह सृष्ट्युत्पादक और सृष्टि-संहारक अणु-शक्ति आज मनुष्य के हाथ आयी है।

इतना ही नहीं मानव ने आसमान में एक नया उपग्रह फेंका है जो पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूम रहा है। यह एक अजीब बात है। आगे इसके आगे केवल अन्तराष्ट्रीय चिन्तन से नहीं चलेगा। अन्तर्गोलीय चिन्तन अन्तर्ग्रहीय विज्ञान की जरूरत पड़गी। अगर मनुष्य मानसिक भूमिका पर रहकर यह सारा करेगा, तो कैसे चलेगा? मान

लीजिये मुझे किसीके प्रति प्रेम है और किसीके प्रति द्वेष। हम तीनों एक ही बाढ़ में बह रहे हैं। तीनों तैरना नहीं जानते, तो वह भी डूबनेवाला है वह भी और मैं भी। प्रेम भी डूबनेवाला है और द्वेष भी। इसलिए जहाँ आप बाढ़ में बहते हैं वहाँ न प्रेम आपके काम में आयेगा और न द्वेष। इस तरह आज जो मानव के हाथ में शक्ति आयी है उसमें बाढ़ आ गयी है। वह है सृष्टि की शक्ति। उस सृष्टि की शक्ति में आपका मन काम नहीं करेगा।

ईश्वर की अवस्था में मानव का मन हानिकर

आज आप उस स्थिति में आ गये हैं, जिस स्थिति में स्वयं भगवान् हैं। आखिर सृष्टि की उत्पत्ति और लय कौन करता है? भगवान् ही न? आज तो सृष्टि की उत्पत्ति और लय मनुष्य भी कर सकता है। मनुष्य एक छोटा-सा भगवान् ही बन गया है। अब भगवान् मन से काम नहीं करेगा मन के ऊपर रहेगा। राग, द्वेष, आसक्ति आदि मन में ही रहते हैं। अगर उसके अन्दर हमारा यह छोटा-सा मन रहा तो बड़ी हानि होगी। भगवान् अगर मनुष्य के मन से काम करेगा तो बड़ी भयानक बात होगी। अगर मनुष्य में गधे का मन काम करे, याने मनुष्य-शक्ति के साथ गधे का मन हो, तो क्या हालत होगी?

विज्ञान के कारण मनुष्य के राग-द्वेष के परिणाम अत्यन्त तीव्र हो सकते हैं। इसलिए मनुष्य जब राग-द्वेषरहित होगा, तभी वह विज्ञान-शक्ति उसके काम आयेगी जो आज उसके हाथ आयी है। इसलिए आज के मानव की समस्या उसके मानसशास्त्र में थोड़ा-सा हेर-फेर करने की नहीं, पुराना सारा मानसशास्त्र खतम करने की है। पुराने मानसशास्त्र के बीस अध्याय हों तो उसमें इक्कीसवाँ अध्याय जोड़ देने से काम न चलेगा। पुराने मानसशास्त्र के सभी ग्रन्थों को हमें जलाना होगा। पुराना सारा जीवन—राग-द्वेष मानापमान, रीति-रिवाज प्रथाएँ सब कुछ बदल देना पड़ेगा।

विज्ञान पहले से ही मन से ऊपर

विज्ञान की भूमिका मन के ऊपर की भूमिका है। विज्ञान आपको अपनी इसी भूमिका से ऊँचा उठाने को जबर्दस्ती कर रहा है। पहले के जमाने में भी यह मालूम था कि विज्ञान की भूमिका मन से ऊपर की भूमिका है। उपनिषदों में कहा गया है : 'प्राणो ब्रह्मेति'। फिर कहा है : 'मनो ब्रह्मेति'। उसके बाद 'विज्ञानं ब्रह्मेति'। प्राण की भूमिका प्राणियों की है मन की भूमिका मनुष्यों की और विज्ञान की भूमिका ऋषियों की है। इस तरह उस जमाने में विज्ञान की भूमिका मालूम तो थी किन्तु उसकी मानव पर जबर्दस्ती नहीं थी। वैयक्तिक विकास के तौर पर कोई मनुष्य अपना विकास करते-करते विज्ञान की भूमिका पर पहुँच जाता था। लेकिन वह सारा व्यक्तिगत विकास का विचार था।

अब कोई महापुरुष वैयक्तिक तौर पर विज्ञान की भूमिका प्राप्त करे यह इस जमाने में नहीं चलेगा। बल्कि अनिवार्यतः सभी लोगों को विज्ञान की भूमिका पर आने का नाटक रचना होगा। मैं झूठा मनुष्य हूँ, लेकिन नाटक में मुझे हरिश्चन्द्र का पार्ट मिला है। मैं यहाँ अपना झूठ याद करूँ, तो हरिश्चन्द्र की भूमिका कैसे जमेगी! जैसे हरिश्चन्द्र की भूमिका अभिनीत करने के लिए अपना झूठ भूलना पड़ता है वैसे ही विज्ञान-युग में हम सब लोगों को अपनी मनोभूमिकाएँ भूल जानी होंगी। अतः आज के युग में हमें विज्ञान की भूमिका पर जबर्दस्ती जाना पड़ेगा।

साधना व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक

किन्तु हम वहाँ जा सकेंगे आध्यात्मिक प्रयत्न से ही। विज्ञान आध्यात्मिक चिन्तन की जबर्दस्ती कर रहा है। वह कह रहा है कि पुराने ऋषि व्यक्तिगत साधना करते थे, अब तुम सामूहिक साधना करो। वह विज्ञान तभी तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा अन्यथा तुम्हारा नाश करेगा। विज्ञान की भूमिका पर जानेवाला ...

करता था ! 'मैं' और 'मेरा' छोड़ देता था । वह वेदान्त बोलता था : 'यह घर मेरा नहीं' 'यह खेत मेरा नहीं' 'यह शरीर मेरा नहीं'। इसी तरह अब हम सब लोगों को कहना होगा कि 'यह घर' 'यह सम्पत्ति, यह खेत मेरा नहीं सबका है'। विज्ञान के जमाने में यह अनिवार्यतः करना ही होगा। आपके सामने दो ही पर्याय हैं—सामूहिक साधना या सर्वनाश। दोनों में से एक चुन लें—या तो आध्यात्मिक साधना कर पृथ्वी पर स्वर्ग उतारें या पृथ्वी के साथ स्वर्ग और स्वर्ग के साथ पृथ्वी को लेकर खतम हो जायें।

सब कुछ नया बनाओ

'सुप्रामेंटल' भूमिका की भाषा दार्शनिक भाषा है, उसे बिल्कुल मामूली समझकर आपको और हमें उसका प्रयोग करना होगा। विद्यार्थी और शिक्षकों को विज्ञान की प्रयोगशाला में यह प्रयोग करना होगा। किसान व्यापारी सरकार, प्रजा सबको यह प्रयोग करना होगा। इसलिए आपके ये पुराने 'टेक्स्ट-बुक' कहानियाँ साहित्य सारा आज निकम्मा हो गया है। सारा वाङ्मय छोटे स्तर पर है। वह अब काम नहीं देगा। इसलिए नया वाङ्मय बनाना होगा। धर्म की फिर से नये सिरे से स्थापना करनी होगी। ऊँचे स्तर पर जाना होगा। पुराना धर्म नहीं चलेगा। 'मूर्ति के सामने गये कपूर जलाया आरती की, तो हो गये भगवान प्रसन्न!' यह अब नहीं चलेगा। अब तो सारा मानव-समाज भगवान् की मूर्ति हो गया है उसकी आरती उतारनी होगी। मानव-देवता को भोग (खाना) मिलता है या नहीं यह देखना होगा।

नाटक ही वास्तविकता में परिणत होगा

आज सारे मानव-समाज को भगवान् समझकर उसकी पूजा का नाटक करना होगा। पहले हम नाटक करेंगे तो भी धीरे-धीरे वह पूरी तरह सध जायगा। हमने ग्रामदान का नाटक शुरू किया है। लोग पूछते हैं कि क्या ग्रामदान के गाँव के लोगों ने जमीन की आसक्ति

छोड़ दी ? क्या वे इतने वैराग्यवान् बन गये ? क्या वे जितने प्रेम से अपने लड़कों की ओर देखते हैं उतने ही प्रेम से गाँव के सब लड़कों की ओर देखते हैं ? आखिर एक क्षण में यह सब कैसे हो गया ? हम कहते हैं कि उन्होंने ग्रामदान किया यानी एक नाटक किया है। विज्ञान का कहना है कि यह नाटक इस जमाने के लिए बहुत जरूरी है। धीरे-धीरे इस नाटक को यही विज्ञान यथार्थ में भी ला देगा।

मारवाड़
११ १-'५८

आत्मज्ञान अभी परिपूर्ण नहीं • ११

आपका यह गाँव एक महापुरुष के नाम से प्रसिद्ध है। फिर भी इस गाँव की ऐसी दयनीय दशा क्यों दीख रही है? क्या हम लोगों के चित्त पर, समाज पर महापुरुषों के जीवन का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ? हमारे महाराष्ट्र में जितनी स्कूली किताबें छपती हैं उनके बाद यदि कोई किताबें छपती हैं तो वे तुकाराम की गाथा ज्ञानेश्वरी आदि आध्यात्मिक ग्रन्थ ही हैं। उनका पठन-पाठन आज दिन तक जारी है। इधर कुछ दिनों से सर्वोदय-साहित्य भी इसी अनुपात में छपने लगा है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सत्पुरुषों का साहित्य अमर्म हो गया और लोगों में आज उनके प्रति कोई आकर्षण ही नहीं रह गया है। इसके विपरीत लोगों को आज भी सत्पुरुषों का ही आकर्षण है। फिर ऐसी स्थिति में भी यह दुर्दशा क्यों? समाज में क्योंकर साम्ययोग दिखाई नहीं पड़ता? यहाँ विषमता क्यों व्याप्त है? इसकी खोज करनी ही होगी।

वैज्ञानिक विनम्र हैं

इसका एक कारण आध्यात्मिक है। हमारे आध्यात्मिक चिन्तन में एक दोष रह गया है। महापुरुषों में कोई दोष नहीं। उनका विचार समझने और उसे समझाकर बताने में दोष रह गया है। साधुओं की यह समझ है कि अध्यात्मज्ञान पूर्णता तक पहुँच गया है। अब उसमें किसी तरह की प्रगति की गुन्जाइश नहीं रही। वेदान्त और सन्तों के अनुभवों के बीच हिन्दुस्तान ने अध्यात्मशास्त्र परिपूर्णता को प्राप्त कर चुका है। लेकिन वैज्ञानिक लोग यही कहते हैं कि विज्ञान कदापि पूर्ण नहीं हुआ है। वे कहते हैं कि हमारी प्रगति बहुत ही अल्प सिन्धु में बिन्दु-सी है। यद्यपि आज स्पुतनिक छोड़ा गया और चन्द्रलोक में अभियान की बातें चल रही हैं मानव की तरह-तरह की

शक्तियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं फिर भी विज्ञानवादी यही कहते हैं कि सृष्टि का ज्ञान अनन्त है और अभी उसका एक छोटा-सा अंश भी हमारे हाथ नहीं आया है।

अध्यात्म का दोष

इसके विपरीत अध्यात्मवादी कहते हैं कि अध्यात्म-ज्ञान पूर्ण हो चुका है। उसमें अब किसी तरह की प्रगति शेष नहीं रही। उसका अन्तिम अध्याय लिखकर 'समाप्तम्' की रेखा भी खींच दी गयी है। अब उसमें कुछ जोड़ना बाकी नहीं रहा। किन्तु ऐसा कहना बहुत बड़ी भूल है। जिस तरह विज्ञान बढ़ रहा है, उसमें नयी-नयी खोजें हो रही हैं और भविष्य में भी होंगी उसी तरह अध्यात्म में भी ऐसी ही खोजें होने को हैं और वह भी बढ़नेवाला है तथा आगे भी बढ़ता रहेगा। आज तक जो अध्यात्म-विद्या हमारे हाथ लगी है वह तो अंशमात्र है। इसलिए पुराने लोगों ने जो लिख रखा है उसे ही बार-बार पढ़ना और उसीकी कथाएँ विभिन्न ढङ्गों से गाते रहना ठीक नहीं। कहा जाता है कि एक ही गाथा पढ़ लेने के बाद दूसरी पढ़ी न जाय। उसकी जरूरत ही नहीं। आखिर ऐसा क्यों? तो कहा जाता है कि एक गाथा में जो अनुभव है वही अन्य गाथाओं में भी है। एक निश्चित अनुभव ही हर गाथा में है। फलतः अध्यात्म की कुछ भी प्रगति न हो पायी। जिसमें नये-नये शोध नहीं हुआ करते वह विद्या कुण्ठित हो जाती है। अध्यात्म के विषय में हमारे देश में यही हुआ। वास्तव में आज तक जो विद्या हाथ लगी है वह उतने में ही पूर्ण है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अब भी अनुभव के कितने ही विषय पड़े हुए हैं।

विज्ञान के दोष अनुभव से सुधारे हैं

विज्ञान में भी कुछ दोष हुआ करते हैं। लेकिन वे अनुभव से सुधारे जाते हैं। एक जमाने में वैज्ञानिक यह मानते थे कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। वे मानते थे कि पृथ्वी सूर्य के चारों

और घूमती है यह कहनेवाले वैज्ञानिक भी हैं। किन्तु वे बड़ा ही सुन्दर तर्क उपस्थित करते। कहते कि 'अगर पृथ्वी सूर्य के चारों और घूमती रहती तो पंछी सुबह अपना घोंसला छोड़ निकलने के बाद शाम को पुनः वहाँ कैसे वापस आ पाते ? कारण तब तक तो पृथ्वी आगे कितनी दूर आगे बढ़ गयी होगी। इसलिए सूर्य ही पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। किन्तु बाद में उन्हें अपने इस कथन का दोष ध्यान में आ गया और उन्होंने आगे चलकर अपनी वे भूलें सुधार लीं। जो भूलें होती हैं उन्हें सुधारना ही चाहिए। हमें अध्यात्म में नया ज्ञान प्राप्त करना है, यह तो एक बाजू ही बात है। लेकिन पुराना जो ज्ञान प्राप्त हो चुका है, उसे ही पूर्ण समझ लेना यह एक बड़ी भूल रह गयी है। इसी कारण हमारे महापुरुषों का सामाजिक जीवन पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता।

भूलों का अर्थशास्त्र पर प्रभाव

भूलों के कारण ही अर्थशास्त्र में मानव में संकुचित वृत्ति बनी हुई है। मेरा घर, मेरा खेत, मेरा धन, मेरे घर का भला, मेरे राष्ट्र का भला—इस तरह 'मेरे' से परे वह सोच ही नहीं पाता। आखिर इसका क्या परिणाम होता है ? एक व्यक्ति की सम्पन्नता दूसरे व्यक्ति के लिए बाधक हो सकती है। अगर मैं सम्पन्न होता हूँ, तो उसके विरुद्ध क्या खड़ा हो जाता है ? दूसरे की विपन्नता ! इसी तरह दूसरे की सम्पत्ति में मेरी आसक्ति भी खड़ी हो सकती है। इस तरह अर्थशास्त्र में विरोध खड़ा हो गया है। आज प्रगतिशील राष्ट्रीय अर्थशास्त्र किसे कहते हैं ? उसका स्वरूप है—दूसरे राष्ट्र का विरोध कर अपने राष्ट्र का उत्थान करना।

अध्यात्म में भी वही भूल

इस भूल के परिणामस्वरूप जिस तरह अर्थशास्त्र में व्यक्तिगतता और संकुचितता का उपयुक्त दोष आ जाता है उसी तरह परमार्थ में भी वह दोष घर कर बैठता है। 'मेरा स्वार्थ' 'मेरा सुख' कहने में

विचार-दोष होता है—दूसरों से अलगाव करना होता है। इसी तरह 'मेरी मुक्ति' यह भी आध्यात्मिक व्यक्तिवाद और स्वार्थवाद है। यह दोष पुराने जमाने में भी लोगों के ध्यान में आ चुका था और प्रह्लाद ने नृसिंह के समक्ष स्पष्ट शब्दों में कह भी दिया था। वह कहता है कि 'बहुधा देव और मुनि अपनी ही मुक्ति की कामना करते और विजन अरण्य में मौनादि का आधार ले मुक्ति का आभास भर कर बैठे हैं। लेकिन मैं इन दीन जनों को छोड़ अकेला मुक्त होना नहीं चाहता।' प्रह्लाद की यह आलोचना आज भी हम लोगों पर लागू हो रही है। कारण अभी तक हमने इसमें कोई सुधार नहीं किया है। 'मेरी मुक्ति' यह कहना वदतो-व्याघात है। 'मैं' का लोप ही मुक्ति का साधन है। अगर इस साधन पर एक का ही आधिपत्य रहता है तो 'मैं' दृढ़ होता है और दूसरे सभी अज्ञानी रह जाते हैं। अगर मैं यह चाहूँ कि मैं ज्ञानी बनूँ और अन्य लोग अज्ञानी ही रहें तो मैं अपने हाथ से मुक्ति गँवा देता हूँ। 'मैं' मुक्ति का साधन नहीं हो सकता—बल्कि बन्धन का ही साधन होता है यह बात अभी हम लोगों के ध्यान में नहीं आ पायी है।

सिद्धि प्राप्ति भी एक पूँजीवाद

हमारे देश में पारमार्थिक साधना करनेवाले हमेशा कहा करते हैं कि 'अहन्ता' और ममता त्याग देनी चाहिए। लेकिन वे उसके अर्थ पर ध्यान नहीं देते। महाभारत में एक पहेली पूछी गयी है: ऐसे कौन शब्द हैं जिनके दो अक्षरों से बंध होता है और तीन अक्षरों से मुक्ति होती है। उत्तर में कहा गया है कि 'मम' से बन्ध और न मम से मुक्ति होती है। मतलब 'मैं' मिटे बिना मुक्ति सम्भव नहीं। लेकिन इसके विपरीत यहाँ 'मैं' ही मजबूत किया जाता है। कुछ सिद्धियाँ हासिल की जाती हैं तो वे भी [illegible] ही [illegible] जाती हैं। यह [illegible] जमाने जैसा ही है। [illegible] बुद्धि [illegible] कर [illegible] है। [illegible] करता है [illegible] है। [illegible]

उसे 'श्री' मिलती है और वह 'श्रीमान्' या पूँजीपति बनता है। इसी तरह वह साधक भी एक तरह से पूँजीपति ही होता है। कहा जाता है कि अमुक महापुरुष को साक्षात्कार हुआ है, सिद्धि प्राप्त हो गयी है वह त्रिकालदर्शी हो गया है। आखिर इसका मतलब क्या है? यही न कि उसके पास सिद्धियों का खजाना है और उनके चमत्कारों से लोग उन्हें साधु समझते और उनसे अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं। उनसे आशीर्वाद माँगते और कहते हैं कि उनके आशीर्वाद से हमारे बाल-बच्चों का कल्याण हुआ वर सम्पन्न हुआ, उनका आशीर्वाद हमें फलीभूत हुआ। मानो वह भी स्वार्थ साधना चाहता है और लोग भी अपना स्वार्थ साधने की सोचते हैं। फलतः समाज स्वार्थरत होता है।

इस तरह हिन्दुस्तान में जो परमार्थ-साधना हुई उसमें सूक्ष्म स्वार्थ भरा हुआ था। इसलिए वह परमार्थ की साधना ही नहीं थी। यह सच है कि पैसा कमाने की साधना से वह अधिक उच्चकोटि की रही। दर्जा ऊँचा था पर जाति दोनों की एक ही थी। स्थूल भेद था पर सूक्ष्म अर्थ में देखा जाय तो भेद नहीं था। दोनों ही व्यक्तिगत ही थीं और दोनों अहन्ता और ममता को बढ़ानेवाली ही रहीं।

देश का बड़ा नेता हुआ तो वह पारमार्थिक दृष्टि से ऊँचा उठ गया क्या यह निश्चित कहा जा सकता है? नहीं एक साधारण छोटे किसान की जैसी संकुचित बुद्धि होती है वैसी उसकी भी हो सकती है। किसान को लगता है कि पड़ोस के खेत की हाथभर जगह मुझे मिल जाय तो अच्छा हो और उसके लिए वह प्रयत्नशील रहता है। इसी तरह कोई राष्ट्र-नेता भी यदि यह सोचने लगे कि अपने देश की सीमा थोड़ी-सी बढ़ जाय दूसरे देश में पेट्रोल अधिक है इसलिए वह भाग हमारे हाथ में आ जाय तो क्या वह पारमार्थिक विचार होगा? जिस तरह उस किसान का विचार स्वार्थी है उसी स्तर का वह स्वार्थी विचार राष्ट्रनेता का भी है। परिमाण अधिक है पर जाति एक

लाउडस्पीकर ही देखिये। इसके सामने मैं जोर-जोर से गालियाँ बकूँ, तो यह उन गालियों को जोरों से सुनायेगा और भजन गाऊँ तो उसे भी जोर से सुनायेगा। उसके सामने जैसा बोलेंगे, वैसा ही वह सिर्फ जोर से सुना देगा। वह खुद न तो बुरा है, न भला। आग घर को जलाने के काम में लायें तो बुरी साबित होगी और रसोई पकाने में उसका उपयोग करें तो अच्छी ठहरेगी। खुद वह न बुरी है न भली। वह देवता है। देवता का स्वभाव ही यह है कि जो जैसा भाव दिखाये उसे वैसा ही फल दे। इस पृथ्वी देवी को ही देखिये। आप इसमें तम्बाकू बोयेंगे तो वह उसीको पैदा करेगी और उसे खाकर आप मरियेगा। अगर केला बोयेंगे तो आपको केले मिलेंगे। इसी तरह विज्ञान भी देवता है। आप उसका जैसा उपयोग करेंगे, वैसा ही वह आपको फल देगा।

विज्ञान ने दया को कम दिखाया

इसी तरह अध्यात्म कहता है कि 'दया करो। सभी पर अपने जैसा ही प्रेम करो। कोई दुःखी हो तो उसकी मदद के लिए दौड़ पड़ो। आज विज्ञान भी यही कह रहा है और कर रहा है। पहले किसीके पेट में दर्द होता और तरह-तरह की दवा खाने पर भी वह न मिटता तो उसे कितना कष्ट सहना पड़ता था! लेकिन अब? दवा से काम न हुआ तो तुरन्त ऑपरेशन कर रोग निकाल फेंक दिया जाता है। आखिर यह किसके बदौलत हो पाया? वह विज्ञान के कारण मदद मिली या नहीं? इस तरह स्पष्ट है कि आत्मज्ञान को विज्ञान ने दया करने का साधन सुलभ कर दिया। पहले पैर में पीड़ा होने पर उसमें दवा लगाते समय इतना कष्ट होता था कि मानव पशुओं की तरह जोर जोर से चिल्लाता था। लेकिन अब उसके पैरों में ऐसी दवा लगा देते हैं कि रोगी अपना ऑपरेशन तक शान्त हो देखता रहता है चू भी नहीं करता। पिछले दिनों मैंने अपने दाँत निकलवाये थे। डॉक्टर ने दवा लगायी और वह दाँत उखाड़ लिये। मैं देखता ही रह गया।

तो सवार के हाथ पर बैठने की जगह घोड़ा ही सवार की छाती पर सवार हो जायगा। इसी तरह विज्ञान को भी आत्मज्ञान की लगाम न रही, तो विज्ञान दुनिया का संहार कर डालेगा। यदि उसे आत्मज्ञान की जोड़ दे दी जाय तो इसी भू पर स्वर्ग उतर आयेगा।

ज्ञानदेव की शिक्षा त्रिकाल में उपयोगी

एक दूसरा भी प्रश्न बहुत अच्छा पूछा गया है कि 'निश्चय ही नामदेव की शिक्षा उस जमाने के लिए बड़ी ही कारगर साबित हुई। लेकिन क्या वह इस विज्ञान-युग के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी?' इस सम्बन्ध में मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह शिक्षा उस जमाने के लिए उपयोगी थी और इस जमाने के लिए भी है। उन्होंने ऐसी युक्ति साथ ली थी कि वह तीनों कालों में उपयोगी सिद्ध होगी। उन्होंने बतलाया है कि यह जो सृष्टि, यह आप के बीच में अणु-परमाणु याने पंचमहाभूत हैं उनका अगर आप बुद्धि ठिकाने रखकर उपयोग करें, तो निश्चय ही ये आपकी मदद करेंगे। नहीं तो आपके सिर चढ़ बैठेंगे।

एक भ्रान्त धारणा

बहुतों को लगता है कि आज विज्ञान खूब बढ़ गया। इसीलिए अब आत्मज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह भ्रान्त धारणा है। जितनी ही विज्ञान की शक्ति बढ़ेगी, उतनी ही आत्मज्ञान की आवश्यकता भी बढ़ जायगी। तीव्र साधन हाथ में आने के बाद अक्ल ठिकाने रखना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है जो आत्मज्ञान न हो सकता है। पुराने जमाने में चाकू ही एक हथियार था। उसका उपयोग करने पर मामूली-सा घाव होता। उसके बाद तलवार और पिस्तौल जैसे उत्तरोत्तर तीव्र साधन (हथियार) हाथ आने लगे। एक बार एक बच्चे को एक भरी पिस्तौल हाथ लग गयी। उसे लगा कि बापूजी हमेशा इससे खेला करते हैं तो आज अपने राम भी खेल-

कर देखें। उसने पिस्तौल की ओर उसका घोड़ा दबाया। भरी पिस्तौल से गोली छूट पड़ी और उसने सामने बैठी उसकी माता की खोपड़ी-खोपड़ी उड़ा दी।

इसलिए आज बच्चों को घर-घर ज्ञानेश्वरी सिखलानी चाहिए। इसीलिए हम लोग घर-घर 'गीता-प्रवचन' और 'गीताई' पहुँचा रहे हैं। इसमें हम लोगों की बुद्धि नहीं उन्हीं लोगों से हमने बुद्धि पायी है। किसी बड़े व्यापारी की तरह ज्ञानदेव के पास बुद्धि का भंडार भरा पड़ा है। उसीमें से कुछ-कुछ ज्ञान लेकर हम गाँव-गाँव पहुँचा रहे हैं। इस तरह उनकी शिक्षा की आज नितान्त उपयोगिता है। आवश्यकता है, हम उसे नवीन भाषा में उपलब्ध कर दें।

विज्ञान के अनुपात में आत्मज्ञान बढ़े

आज युग की माँग है कि विज्ञान की जितनी शक्ति बढ़ेगी, आत्मज्ञान की भी उतनी ही शक्ति बढ़नी चाहिए। आज अमेरिका में विज्ञान काफी बढ़ गया है लेकिन वहाँ आत्मज्ञान की कमी है। इसके विपरीत हमारे देश में विज्ञान की कमी है पर आत्मज्ञान पर्याप्त है। इसलिए यहाँ विज्ञान कितना ही क्यों न बढ़े कोई चिन्ता नहीं। वास्तव में एक हाथ में ज्ञानेश्वरी और दूसरे हाथ में विज्ञान, ऐसी स्थिति होनी चाहिए। आत्मज्ञान की कमी के कारण ही आज अमेरिका में मामूली बातों पर झगड़े होते हैं और आये दिन आत्म-हत्याओं के समाचार मिलते हैं। वहाँ विज्ञान बच्चों के हाथ में चला गया है। उसकी अक्ल ठिकाने पर नहीं है। उनमें आत्मज्ञान की बेहद कमी है। उनका कुल पाँच सौ वर्षों का इतिहास है जब कि हमारा इतिहास दस हजार वर्षों का है। इसलिए विज्ञान के अनुपात में आत्मज्ञान की वृद्धि होनी ही चाहिए।

मांजरें (

इन दिनों मैं प्यारेलालजी की किताब 'लास्ट फेज' देख रहा हूँ। उसमें पढ़ा कि 'बापू विनयपूर्वक कहते थे कि सत्याग्रह का बहुत ही थोड़ा अंश हमने देखा है। यह शास्त्र बहुत गहरा है और इसमें काफी खोज होने को बाकी है। यह केवल विनय का कथन नहीं, बल्कि यथार्थता है। हमने सत्याग्रह के जो प्रयोग किये वे अंधेरे में टटोलने जैसे थे। उस समय कोई स्वच्छ प्रकाश उपलब्ध नहीं हुआ था। कुछ-कुछ थोड़ा-सा प्रकाश मिला उतना ही लेकर हम आगे बढ़े। लोकतंत्र में सत्याग्रह का स्वरूप कैसा होगा आदि के बारे में मैंने कुछ कहा है। लेकिन इस वक्त मैं लोकतंत्र के सवाल से नहीं सोच रहा हूँ। लोकतंत्र एक छोटी चीज है। यह जमाना सिर्फ लोकतंत्र का नहीं, बल्कि विज्ञान का है। मैंने एक व्याख्यान में कहा था कि जीवन को आकार देनेवाली तीन शक्तियाँ हैं : १. आत्मज्ञान-शक्ति २. विज्ञान-शक्ति और ३. शब्द-शक्ति यानी साहित्य की शक्ति।

विज्ञान की शक्ति का प्रभाव

दुनिया पर जिनका विशेष परिणाम हुआ है वे राजनीति में ही काम करनेवाले थे। बाबर आया तो उसने हिन्दुस्तान और एशिया पर असर डाला। इसलिए न सिर्फ हिन्दुस्तान के, बल्कि दुनिया के इतिहास में उसका जिक्र है। इसी तरह सिकंदर, नेपोलियन आदि जिन जिन लोगों ने राजनैतिक क्षेत्र में पराक्रम किये उनका दुनिया पर विशेष असर हुआ। किन्तु ऐसा मानना निरा भ्रम है। वे जिस जमाने में पैदा हुए, उस जमाने में भी कुछ वैज्ञानिक शक्तियाँ उन्हें उपलब्ध थीं। जितने जहाज इंग्लैंड के पास थे उतने भारत के पास नहीं। खुद शिवाजी भी पोर्तुगीजों से तलवारें मंगाता था। मराठी में तलवार के लिए 'फिरंग' (पोर्तुगीज) शब्द है। "फिरंगीच्या पुढे

बन्दरविले"—फिरंगी के सामने दूसरे छोटे-छोटे औजार क्या टिकेंगे! इसलिए चाहे वे आक्रमण बाबर और सिकंदर के हों या मार्कोपोलो कोलम्बस जैसे यात्रियों के, वे विज्ञान की शक्ति से ही होते थे। इस तरह विज्ञान की शक्ति का ही दुनिया पर परिणाम होता है।

आत्मज्ञान और शब्द-शक्ति का प्रभाव

दुनिया पर असर करनेवाली दूसरी शक्ति है आत्मज्ञान। आत्मज्ञान से मनुष्य को यह दिशा मिलती है कि विज्ञान का उपयोग कैसे करें। इसलिए उस-उस जमाने के लोग आत्मज्ञान की शक्ति के अनुसार विज्ञान के प्रयोग करते थे। दुनिया में मांस बनता था। सस्ता भी था फिर भी जैनों ने मांसाहार छोड़ दिया। फिर हिन्दू-धर्म में भी उसका आदर हुआ। हिन्दू-धर्म में कई ऐसी जमातें हैं जिन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है। इसके पीछे केवल विज्ञान नहीं बल्कि आत्मज्ञान है! आज मानव सोच रहा है कि फाँसी की सजा रद्द होनी चाहिए। यह उसे विज्ञान नहीं बल्कि आत्मज्ञान सुझा रहा है। आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों के बीच रहकर अनुसंधान करनेवाला है—शब्दशक्ति-सम्पन्न साहित्यिक जिसे ज्ञानदेव ने 'शब्दतत्त्व-सारज्ञ' कहा है।

विज्ञान-युग में सत्याग्रह का रूप

हाँ तो सत्याग्रह के बारे में सोचते हुए एक बात मैंने कही थी कि बापू के जमाने में लोकतन्त्र नहीं था। यद्यपि उनके आखिरी दिनों में भारत में अपना राज्य हो गया था फिर भी लोकतन्त्र वैसा विकसित नहीं था जैसा कि आज है। इसलिए परिस्थिति में फर्क पड़ सकता है। लेकिन अभी मैं यह बात छोड़ देता हूँ और विज्ञान के जमाने में सत्याग्रह का स्वरूप क्या रहेगा इस बारे में कुछ कहूँगा। सामनेवाला लाठी लेकर आवे और हममें से कोई बलवान् ~~~ बलवान् स्त्री-पुरुष हो तो सामनेवाले को महसूस होगा कि लाठी लेकर आना मूर्खता है। वाल्मीकि व्याधा रहते समय कुल्हाड़ी लेकर नारद को मारने आया,

तो उसका परिवर्तन हो गया। लेकिन आज जब कोई ऊपर से या घर बैठे ही बम फेंक सकेगा, तो इस स्थिति में सत्याग्रह क्या करेगा? वहाँ सत्याग्रही की आँखों की करुणा और वाणी का मार्दव क्या करेगा?

आध्यात्मिक क्षेत्र में गहरा डूबना होगा

इसलिए जब विज्ञान-शक्ति आयी है, तो हमें आध्यात्मिक क्षेत्र में गहरा डूबना होगा। प्राचीन काल के ऋषि जितने गहरे डूबे थे, उससे भी अधिक गहराई में जाना होगा। जैसे विज्ञान के कारण कुछ लोगों के पास घर बैठे दुनिया को खतम करने की शक्ति आ गयी है, वैसे ही हमें भी घर बैठे ऐसी आध्यात्मिक शक्ति विकसित करनी होगी, जिसका असर कुल दुनिया पर हो। इसके सिवा सत्याग्रह की गति नहीं।

इसे मैं रहस्यवाद नहीं मानता। रहस्यवादियों या भक्तों ने ध्यान से विविध दर्शन के जो अनुभव पाये, वे सब आश्वासनमात्र हैं। वास्तव में वे दर्शन नहीं। भक्त ने जो इच्छा रखी, वही भगवान् ने पूर्ण की और उसे आश्वासन दिया। उसीको दर्शन समझकर कोई तृप्त हो, तो वह गहरी खोज से, दर्शन से वंचित रह जायगा। रहस्यवाद भी एक बड़ी चीज है। अव्यक्त विश्व के साथ सीधा साक्षात् संपर्क होना बड़ी बात है। किन्तु अब इतने से ही काम न चलेगा। आज ऐसी शक्ति की खोज तब तक नहीं हो सकती, जब तक हम मन के क्षेत्र में डूबे रहेंगे। इसलिए जब मैं सोचता हूँ, तब ये सारी देशों की सीमाएँ, भाषा की सीमाएँ, धर्म-पन्थ आदि सबकी चर्चा बिलकुल ही निस्सार मालूम होती है।

विश्व-शक्ति का आविष्कार : विश्व-पूजा-स्थान

अभी एक अखबार ने लिखा है कि 'विनोबा ने पंढरपुर में दूसरे धर्मवालों के साथ मंदिर में प्रवेश करके किया ही क्या? क्योंकि हम हरिजनों से दूसरे धर्मवालों को ऊँचा मानते ही थे। जब हरिजनों को मंदिर प्रवेश मिल चुका, तो बाबा ने और अधिक क्या किया?'

विचारनेवाला समझता ही नहीं कि इसमें क्या चीज भरी पड़ी है। बात यह है कि हर पूजास्थान को हम 'विश्व-पूजा-स्थान' बनाना चाहते हैं। आज हर पूजा-स्थान सीमित और संकुचित है। बाइबिल कुरान या मूर्ति चाहे जिसे लेकर हो वह सीमित है। उस-उस प्रकार की श्रद्धा लेकर मानव उस-उस पूजा-स्थान में जाता है। जिसकी श्रद्धा उससे विरुद्ध है वह वहाँ नहीं जाता। किंतु जिनकी श्रद्धाएँ विरोधी नहीं, बल्कि भिन्न-भिन्न हैं ऐसे लोग भी क्या एक पूजा-स्थान में जा सकते हैं? मसजिद में मुसलमान ही जा सकते हैं मन्दिर में हिन्दू ही जा सकते हैं चर्च में ईसाई ही जा सकते हैं—यह एक प्रक्रिया है। अब अगर हम कोई ऐसा विशेष स्थान बनायें जहाँ सब जा सकें तो वह दूसरी प्रक्रिया होगी। किन्तु उससे भिन्न प्रक्रिया यह है कि जितने पूजा के स्थान हों वहाँ सभी जा सकें। भले ही हम घर पर उससे भिन्न पूजा करें, पर वहाँ सभी जा सकें। जितनी श्रद्धा और भावना से दूसरे पूजा करते हैं उतनी ही श्रद्धा और भावना से हम भी वहाँ जाकर पूजा कर सकें। दूसरे धर्मवालों के साथ मसजिद और चर्च में जाकर पूजा करने के अनुभव मैंने लिये हैं। जैसे गीता पढ़ते समय मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं वैसे ही कुरान या बाइबिल पढ़ते समय भी आते हैं क्योंकि उनमें बुनियादी चीज है। इसीलिए मैंने पंढरपुर में जो यह कहा कि 'सारे विश्व को एक करने की प्रक्रिया वहाँ शुरू हुई और विश्वशांति का एक धक्का हमारे हाथ में आया' वह केवल मानसिक कल्पनामात्र नहीं थी। विश्वशांति के लिए हमें जिन शक्तियों की खोज करनी है उसके अन्दर यही चीज पड़ी हुई है।

साने गुरुजी को मेरी ही प्रेरणा

साने गुरुजी ने पंढरपुर के मंदिर में हरिजनों के प्रवेश के लिए जो सत्याग्रह किया उसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूँ। कारण सन् १९४५ में जेल से छूटने पर मैंने व्याख्यान में जिन बातों पर अत्यधिक प्रकट किया था, उन्हींको लेकर उन्होंने वहाँ उपवास किये। इससे पहले

उन्होंने छह महीने प्रांतभर घूमकर प्रचार किया। जब वे पलभार आये तो उन्होंने मेरा विचार जानना चाहा। मैंने कहा : मेरा सत्याग्रह जारी है। मेरे हृदय में विठ्ठल उतने ही बसे हैं जितने उनके किसी प्राचीन या अर्वाचीन भक्त के हृदय में बसे होंगे। इस उपास्य देवता की भक्ति के रंग में रँगे लोगों ने जितना साहित्य लिखा उसका मैंने खूब अध्ययन किया है। उसके साथ मैं जितना एकरूप हो सकता हूँ, उतना शायद ही दूसरे किसी साहित्य के साथ हो सकूँ, क्योंकि मेरी मातृभाषा मराठी है। इतना होने पर भी मैं उपवास करके मंदिर प्रवेश नहीं करूँगा। जब तक वहाँ हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलेगा तब तक मैं भी वहाँ नहीं जाऊँगा। यही मेरा सत्याग्रह है। फिर उन्होंने पूछा कि 'क्या मेरा उपवास भी गलत है?' तो मैंने कहा : 'जी नहीं आप उपवास कर सकते हैं।' इस तरह मेरा यह कभी रवैया नहीं रहा कि साने गुरुजी ने जिस ढंग का सत्याग्रह किया उस ढंग का सत्याग्रह मैं करूँ।

समग्रपरिवर्तन मन से ऊपर उठने पर ही

जब उस जमाने में भी मेरा यह रवैया नहीं रहा तो इस जमाने में जब कि विज्ञान जोरों से आगे बढ़ रहा है हमें समझना चाहिए कि मन के परिवर्तन की प्रक्रिया मन के क्षेत्र के अन्दर रहकर होनेवाली ही नहीं है। मन को नीचे रखकर हम उससे ऊपर जायें तो स्वयमेव मन खतम हो जायगा। फिर उसके परिवर्तन की बात ही नहीं रहेगी। आज जब हम हृदय परिवर्तन की बात करते हैं तो होता यह है कि सामने के सज्जन मनुष्य के बाप बनते हैं। इसीलिए उसके परिवर्तन की हम कोशिश करते हैं। किन्तु अभी मैं जिस प्रकार से चिंतन करता हूँ उसमें मन है ही नहीं यह मानकर काम किया जाता है।

[illegible] विज्ञान के जमाने में [illegible] के कर्मों का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए पूर्ण [illegible] इस तरह [illegible] [illegible] के [illegible] होता है। [illegible] पर का आज का नया [illegible] नहीं पहले

से ही मेरा यह विचार था जो आज विज्ञान के कारण स्पष्ट हो रहा है। विज्ञान-युग में जब तक हम मन के क्षेत्र में काम करेंगे, तब तक मन-परिवर्तन के मामले में उलझते ही जायेंगे। कहीं निस्तार नहीं होगा, इसीमें चक्कर काटते रहेंगे। इसलिए इस जमाने में पुरानी दण्डनीतियाँ, पुराना साहित्य आदि कुछ भी न चलेगा।

अतिमानस क्षेत्र में ही सच्चा धर्म

अभी तक धर्म-स्थापना नहीं हुई है, धर्म बना ही नहीं है। धर्म बनने के लिए जिन बुनियादों की जरूरत है वे अब तक थीं ही नहीं क्योंकि विज्ञान नहीं था। ऋषियों ने दर्शन से कुछ चीजें रखीं और लोगों ने श्रद्धा से उन्हें ग्रहण किया, इसलिए कुछ विश्वास बने, परन्तु कानून नहीं बना। उन्हें प्रमाण मानने की भूमिका में दुनिया नहीं आयी। सत्य अहिंसा आदि का यही हाल है। लोग कहते हैं कि सत्य अच्छा है किन्तु हर हालत में सत्य अच्छा ही है ऐसा नहीं कहते। मकान बनानेवाला कारीगर जानता है कि दीवाल जमीन से • अंश के कोण पर ही खड़ी करनी चाहिए। जैसे उसे यह विश्वास हो गया है, ऐसा मानव को अभी तक विश्वास नहीं हुआ है कि सत्य हमेशा अच्छा ही है। इसलिए अब तक धर्म नहीं बना है। विज्ञान धर्म की बुनियाद होगी और उस पर धर्म खड़ा होगा। आज के नैतिक क्षेत्र में धर्म की जो बातें चलती हैं वे बिलकुल छोटी हैं। उनसे ऊपर उठने पर ही धर्म आयेगा। फिर विज्ञान और धर्म में कोई विरोध नहीं, बल्कि पूरा सामंजस्य होगा।

मेरा आजकल का चिंतन

इन दिनों मेरा यही चिंतन चल रहा है। इसलिए तीन साल पहले मुझमें जितना पुरुषार्थ था उतना आज नहीं दीख रहा है। जिसे हम 'निवृत्ति' कहते हैं—याने प्रवृत्ति विरोधी निवृत्ति नहीं—वह तो एक वृत्ति ही है। 'लोभ' का विरोध 'काम' करता है और 'काम'

का विरोध 'क्रोध'। दोनों परस्परविरोधी वृत्तियाँ हैं। जागृति के बाद निद्रा आती है और निद्रा के बाद जागृति। दोनों वृत्तियाँ हैं। किन्तु इस भाषा में मैं नहीं बोल रहा हूँ, बल्कि दूसरी भाषा में निवृत्ति की ओर जा रहा हूँ। यह एक शक्ति की खोज है। उसे मैं सत्याग्रह शक्ति की खोज मानता हूँ।

नाहक मन से टक्कर क्यों ?

अभी राजस्थान के एक भाई ने सत्याग्रह की एक समस्या के बारे में मेरी राय पूछी है। वहाँ के एक गाँव में हरिजनों की ओर से उस भाई का आग्रह है कि उन्हें कुएँ पर पानी भरने दिया जाय। इसके लिए किसीने उपवास भी शुरू किया है। गाँववालों ने कहा कि 'हरिजनों के लिए हम स्वतंत्र कुआँ बनवा देंगे'। उस भाई ने मुझसे पूछा कि 'क्या इस सुझाव को मंजूर कर लिया जाय या उपवास जारी रखा जाय'। इस सम्बन्ध में मैं यही समझता हूँ कि आज तक जो विचार-परंपरा चली आयी है उसके अनुसार यही कहना होगा कि उपवास जारी रखा जाय क्योंकि नया कुआँ बनाने से मसला हल सुरक्षित नहीं होता। किन्तु मैं ऐसी सलाह नहीं दूँगा। बल्कि उन्हें यही लिखनेवाला हूँ कि नया कुआँ बनाने का सुझाव मंजूर कर लें। जातिभेदों को हस्ती मानकर जो भी काम किये जायेंगे वे सभी जातिभेदों को और पक्का बनायेंगे। नये कुएँ पर हरिजन भी पानी भरेंगे और दूसरे भी। तब सब मिलकर एक जमात बनेगी और धीरे धीरे प्रेमभाव बढ़ेगा। आज की परम्परा के अनुसार मेरी यह सलाह कमजोर मानी जायगी। किन्तु वास्तव में यह कमजोर नहीं बल्कि मजबूत सलाह है क्योंकि वह मन को ही खतम करती है। नाहक मन के साथ मन की टक्कर होने देने के बजाय मन से ऊपर उठकर सोचना उचित है। ऐसी स्थिति में यही उचित मालूम होगा कि नया कुआँ बनने दिया जाय और प्रेम बढ़ने दिया जाय।

शोधक एक, उपयोजक अनेक

इस आध्यात्मिक ऐटम बम की खोज भी सभी नहीं, कुछ थोड़े-से ही व्यक्ति कर सकेंगे। जैसे अणु-शक्ति की खोज थोड़े लोगों द्वारा होने पर भी उसके फलस्वरूप बननेवाले औजारों को सभी इस्तेमाल करेंगे। बिजली की खोज करनेवाला एक ही व्यक्ति था। परन्तु अब सब लोग बिजली का इस्तेमाल करते हैं। वैसे ही आध्यात्मिक खोज करनेवाला भी एक विशेष व्यक्ति ही रहेगा किन्तु खोज होने पर उसका इस्तेमाल सभी लोग करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सत्याग्रह का रूप

पूछा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सत्याग्रह किस प्रकार किया जाय? इस सम्बन्ध में मेरा यही मत है कि सत्याग्रह एक आध्यात्मिक शक्ति है। वह न भौतिक शक्ति है न मानसिक। विज्ञान एक ऐसी शक्ति है जो मानसशास्त्र को गौण बना देती है। इसलिए अब मन के सबके ऊपर उठकर अतिमानस की ओर जाकर ही सत्याग्रह की खोज करनी होगी। अगर आप अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं सत्याग्रह के तरीके से सुलझाने जनमत और सरकारी शक्ति से अलग रहकर हल करना चाहते हैं तो आपको अतिमानस स्तर पर जाना होगा। भूदान-यात्रा के सिलसिले में मेरा विभिन्न देशों के लोगों से भी संपर्क आया उससे मेरा यह विश्वास दृढ़ हो गया कि मानव मूलतः एक है। वह विज्ञान के समान स्तर पर ही है। इसलिए हमारे पास ऐसी शक्ति होनी चाहिए, जो एक व्यक्ति की आत्मा में प्रकट हो और सारे विश्व पर असर डाले। व्यक्ति जब अपने जीवन के क्षेत्र में मन की सीमा पार कर अतिमानस भूमिका पर जा सकेगा तभी सारे विश्व पर असर डालनेवाली शक्ति पैदा होगी।

बड़गाँव (उस्मानाबाद)
१२-६-'५८

मन क्षोभ से सदा बचें १४

हिन्दुस्तान जैसे विभिन्नता और अनेकता से भरे देश में बिना स्नेह के कोई काम चलता है तो भले ही वह कितना ही महत्त्व का हो लेकिन अन्ततः हानिकारक ही सिद्ध होगा। अतः हमारे देश के लिए सबसे मुख्य बात 'अनुराग' और 'स्नेह' है।

आज मतभेदों का मूल्य न्यूनतम

मैं तो सभी आइडियोलॉजी या विचारसरणियों को गौण और स्नेह-भावना को ही मुख्य मानता हूं। विज्ञान ने जो साधन पैदा किये हैं उनके सामने यह 'आइडियोलॉजी' सर्वथा गौण हो जाती है। विज्ञान के कारण मानव के हाथ में ऐसे-ऐसे विविध साधन आ गये हैं जिनसे अत्यधिक लाभ हो सकता है और अत्यधिक हानि भी। दोनों सम्भावनाएँ विज्ञान में हैं। अतः यदि हमें विज्ञान के साधनों से लाभ उठाना हो तो मतभेदों के कारण कभी भी कटुता पैदा न कर सदैव प्रेमभाव ही कायम रखना चाहिए। इस तरह विज्ञान-युग में मतभेदों का मूल्य बहुत ही कम हो जाता है।

विज्ञान-युग में जहाँ मतभेद रहते हैं उस स्थान की भी कीमत कम हो जाती है। आखिर मतभेद कहाँ रहते हैं? आँख, कान, नाक, शरीर या आत्मा में नहीं, मन में ही रहते हैं। ज्यों-ज्यों विज्ञान बढ़ेगा त्यों-त्यों मन का मह[illegible] न निश्चित ही घटता जायगा लेकिन आत्मा [illegible] के मह[illegible] [illegible] भी [illegible] बना [illegible] रहेगा। भूख लगने पर खाना [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] है [illegible] विज्ञान युग में भी [illegible] [illegible] न [illegible] भाग मन [illegible] [illegible] न सकेगा। मन में

विविध विचार, तरह-तरह के संकल्प-विकल्प और राग-द्वेष हुआ करते हैं, जिनके कारण टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, एकीकरण नहीं हो पाता। विज्ञान एकीकरण की अपेक्षा करता है। यदि हम सारे समाज को एक करने का उपाय करें तो विज्ञान से लाभ उठा सकते हैं।

मतभेद बौद्धिक स्तर पर लाये जायं

मन को विक्षेप होने पर जो औजार सामने दीखते हैं, मानव उन्हींका उपयोग करने लगता है। इन दिनों हम-आप कई सभाओं में लोकसभाई कुर्सी-टेबुल की उठा-पटक की घटनाएँ देखते-सुनते रहते हैं। यदि उस क्षोभ के समय आज के तीव्र-से-तीव्र औजार उपस्थित रहें और मानव उनका उपयोग करे, तो कितना अनर्थ होगा, इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। उससे विज्ञान को कुछ लाभ तो मिलेगा ही नहीं, बुरी-से-बुरी हानि ही उठानी पड़ेगी। अतः हमें मतभेदों को बुद्धि के क्षेत्र में लाना चाहिए, उन्हें मन के क्षेत्र में रखना ठीक नहीं। यानी बौद्धिक दृष्टि से हम एक दूसरे को समझायें और परस्पर विचारों का परिवर्तन करने की कोशिश करें।

बापू उत्तरोत्तर साधन-शुद्धि की जो बात करते थे, विज्ञान के कारण उसे भी अत्यधिक बल प्राप्त हो गया है। आज 'साधन-शुद्धि' का अर्थ यह है कि हम जिन साधनों का उपयोग करें उनके विषय में न तो हमारे मन में क्षोभ हो और न सामनेवाले के मन में। समाज में बिना क्षोभ के मानसिक या सामाजिक जो कोई परिवर्तन हो सके वही होना चाहिए। यानी परस्पर विचार-विमर्श ही होना चाहिए। सभी प्रश्न हल हो गये हों—ऐसा भी जमाना कोई हो सकता है, पर कल्पना ही नहीं की जा सकती। सतत कोई-न-कोई प्रश्न रहेगा ही। किन्तु विज्ञान-युग की यही माँग है कि उन प्रश्नों के हल के साधन शुद्ध होने चाहिए। पहले किसीको गाली न देना या किसी पर वार न करना ही साधन-शुद्धि में आता था। किन्तु अब विज्ञान के कारण

उसका क्षेत्र भी व्यापक हो गया है। आज साधन-शुद्धि का अर्थ 'मन में क्षोभ पैदा न करनेवाले साधन' तक व्यापक हो जाता है।

मन नहीं, बुद्धि को अपील करें

इस पर प्रश्न उठता है कि 'मन में क्षोभ न हो' तो आन्दोलन कैसे चल सकता है? 'आन्दोलन' का अर्थ है मन में क्षोभ। आज जो भी आन्दोलन किया जाता है तो मन में क्षोभ पैदा करते ही हैं। फिर वह अच्छे अर्थ में हो या बुरे अर्थ में यह अलग बात है। अतः क्षोभ पैदा किये बिना काम ही कैसे चलेगा? यह प्रश्न पूछनेवाले का मन पुराने जमाने का है इस जमाने का नहीं। यह विज्ञान-युग का मन नहीं। पुराने मन को पता ही नहीं कि बिना क्षोभ के भी हलचलें हो सकती हैं।

पंडित जवाहरलालजी ने 'भारत की खोज' नामक ग्रन्थ में शंकराचार्य का वर्णन किया है। वे लिखते हैं : 'बड़े आश्चर्य की बात है कि शंकराचार्य ने एक सामाजिक कार्य किया और सारे भारत के हृदय पर अमिट प्रभाव डाला। यह भी केवल बुद्धिपूर्वक विचार समझाकर किया। साधारणतः सामाजिक नेतागण समाज में परिवर्तन करने के लिए प्रायः मन को ही अपील करते हैं। किन्तु शङ्कराचार्य ने मन को नहीं बल्कि बुद्धि को ही अपील की। बुद्धि को अपील करते हुए भी साधारणतः जैसे अन्य दार्शनिक केवल शाब्दिक चर्चा करते हैं, वैसा उन्होंने नहीं किया। प्रत्युत वे गाँव-गाँव घूमे। पन्द्रह-सोलह वर्षों तक लगातार घूमने के साथ-साथ वे लोगों के पास पहुँचकर उन्हें विचार भी समझाते रहे। आज के विज्ञान-युग में शङ्कर की यह पद्धति ही चलेगी। पुराने जमाने में शङ्कर जितने बलवान् थे अब उससे भी अधिक बलवान् होंगे। क्योंकि उनके ग्रन्थों में विचारों के सिवा कुछ भी नहीं है। वे विचार ही समझाते थे और वह समझ में न आता तो बार-बार समझाते थे। विचार समझाने की यह शक्ति ही वैज्ञानिक शक्ति है।

यदि मार विचार की प्रेरक होती—!

लेकिन आजकल अगर समझाने पर भी कोई हमारी बात नहीं मानता तो हम उसके कान खोलने के लिए कुछ उल्टी बातें कर बैठते हैं। ऐसे ही कई काम करते हैं। किन्तु इनमें मारने-पीटने की बात तो अब छोड़ ही देनी चाहिए। कोई शिक्षक छात्रों को कुछ उपदेश दे और वे न मानें तो वह खुद का ही एक तमाचा जड़ देता है। उसका उद्देश्य यही रहता है कि छात्र समझ जायें कि हमारे न मानने से इन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्हें उसकी बात सुनने का मन हो जाय। किन्तु सोचने की बात है कि अपने को तमाचा मार लेने की बात शान्तिपूर्वक हुई या क्षोभपूर्वक? ग्रामोफोन कोई गाना सुना देता है तो उसे कोई हर्ष या क्षोभ नहीं होता पर गानेवाले गायक को तो होता ही है। इसी तरह मारना या अपने को मार लेना क्षोभपूर्वक ही माना जायगा न कि विचार-प्रेरक। यदि इस तरह किसीको मारने या खुद को मार लेने से विचार की प्रेरणा होती हो तो फिर इतने सारे ग्रन्थों और शिक्षण-शास्त्र की भी कोई जरूरत न रहती।

फिर उपवास भी क्या देगा?

कोई अपनी बात मनवाने के लिए अनशन या उपवास भी करते हैं। किन्तु यह उपवास क्यों किया जाता है? हमारी देह ने तो कोई अपराध किया नहीं है। पेट में कुछ अपचन हो, तो न खाना ठीक भी है। लेकिन कोई रोग न होने पर भी भूखा क्यों रहा जाय? इसी तरह शरीर से कुछ काम न करवाना हो और केवल ध्यान ही करना हो, तो खाना छोड़ देना समझ में आ भी सकता है। शरीर-शोध के लिए या प्रायश्चित्तस्वरूप उपवास की बात समझ में आ सकती है। लेकिन मानव को बौद्धिक प्रेरणा देने के लिए उपवास करने का अर्थ ही क्या है? इसमें प्रेम करुणा और सत्यनिष्ठा होने के बावजूद यदि किसी पर उनका असर नहीं होता, तो इन उपवासों से भी क्या होगा?

आप कहेंगे कि वह करुणाप्रेरित उपवास है; तो मैं कहूँगा, शिशु का हाथ को मारना भी करुणाप्रेरित ही तो है। किन्तु इस तरह तो बच्चे को देह-पीड़ा देकर बाध्य करने की शिक्षा मिलती है। फलत कल अगर कोई अत्याचारी उसे पीड़ा दे तो वह उसके भी बाध्य में हो सकता है; यह बड़ी बुरी बात हो जायगी।

आज अमेरिका और मास्को से बैठे-बैठे हिंदुस्तान पर बम डालकर उसे नष्ट किया जा सकता है। वही बम दिखाकर कोई ऊपर से अपने विचार मान लेने के लिए पर्चे बरसावे, तो उसके सामने इन उपवासों का महत्त्व ही क्या है? उनसे आप कितना परिवर्तन कर सकते हैं? हम उपवास से जितना क्षोभ पैदा कर सकते हैं उससे अत्यधिक क्षोभ तो बम पैदा कर देता है। अतः जब हम बुद्धि से प्रेरित होकर काम करेंगे, तभी काम हो सकेगा। विज्ञान-युग में क्षोभ पैदा करने की प्रक्रिया का उत्तरोत्तर कम ही अवकाश रहेगा।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अब हम अपने मतभेदों के अंशों को अलग रखें और सबमें समानता का जितना अंश हो उतना कार्यक्रम बनायें। इसके बाद भी मतभेद हो तो उनके बारे में विचार किया जाय। इस तरह हम उस बुद्धि के क्षेत्र में ले जायें। भौतिक दृष्टि से परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जाय। समान अंश का कार्यक्रम बनायें और असमान अंश पर विचार करें। यदि इस तरह करने पर भी किसी प्रश्न का हल न हो पाये तो उसे वैसा ही पड़ा रहने दें।

शिवपुर
२१-१२-'५८

मुझसे पूछा गया है कि 'यह विज्ञान का युग है। इस युग में हम सारे विश्व के साथ अहिंसा की भूमिका पर किस प्रकार जुड़ सकेंगे!

अहिंसा की भूमिका पर विश्व से सम्बन्ध

प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक है। इसका उत्तर समझने से पहले हमें यह मान लेना चाहिए कि बुद्धि और मन के बीच ऐक्य नहीं है। इसी तरह का दूसरा सवाल हिंसा और अहिंसा के बीच भी है। हिंसा द्वारा काम जल्दी कर लेने की इच्छा निरी वासना है। अतः हिंसा में पड़ने का हम मोह न करें। फिर भले ही दूसरे मार्ग से अधिक समय लगे।

यह भूमिका समझ लेने के बाद मैं मूल प्रश्न पर आता हूँ। कुछ उदाहरणों से आपका प्रश्न ठीक तरह हल हो सकेगा। गोवा की ही बात लीजिये। यदि आज विज्ञान का युग न होता तो यह प्रश्न कभी का हल हो जाता, दुनिया को पता भी न चलता। किन्तु आज यह छोटा-सा प्रश्न भी अन्तरराष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। इसी तरह आपके यहाँ गुजरात में एक जगह तेल निकला है। लेकिन वह केवल गुजरात का नहीं बल्कि पूरे भारत का माना जाता है। आगे चलकर वही तेल अखिल विश्व का माना जायगा। फिर उससे सम्बद्ध निर्णय दिल्ली में न होकर विश्व के किसी केन्द्र में होंगे ताकि समस्त राष्ट्र उस तेल से लाभान्वित हो सकें। इसी तरह आगे चलकर हर प्रश्न व्यापक होते जायेंगे। उनका निर्णय 'विश्व-केन्द्र' में होगा। जो प्रश्न व्यापक न होंगे वे स्थानीय होंगे। स्थानीय निर्णय विकेन्द्रित होंगे। स्थानीय निर्णयों के लिए रिफरेन्स के तौर पर उन्हीं लोगों से पूछा जायगा,

जो विशिष्ट योग्यतावाले राग-द्वेषरहित पुरुष हों। इससे तत्काल सारे प्रश्नों का समाधान हो जाया करेगा।

आज तो महागुजरात का प्रश्न ही देखिये। कितना लम्बा हो रहा है! लेकिन विज्ञान-युग में ऐसे प्रश्नों के निपटारे के लिए अमेरिका रूस जापान आदि के वे लोग भी होंगे, जो निर्णायक बुद्धिवाले माने जाते हैं। वैसे सभी लोग सम्मिलित रूप से निर्णय देंगे, वह मान लिया जायगा।

उपकरण बढ़ेंगे, वासनाएँ घटेंगी

पूछा गया है कि विज्ञान के कारण भौतिक सुख-सुविधाओं का प्राचुर्य हो रहा है। क्या यह ठीक है? विज्ञान-युग में उपकरण उत्तम और विपुल होंगे। आँखों के लिए अच्छे-से-अच्छे चश्मे चाहिए, तो वे सुलभ होंगे। किन्तु उसके साथ ही ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें चश्मों की जरूरत ही न रहेगी। इसी तरह हर रोग के लिए अच्छी-से-अच्छी औषधि सुलभ होगी। एक ही डॉक्टर से दवा लेने की परवशता न रहेगी। किन्तु ऐसे भी लोग रहेंगे जिन्हें दवा की कोई जरूरत ही न पड़े। गाँव-गाँव में मोटरें सुलभ रहेंगी लेकिन कहीं पास में व्याख्यान सुनने जाना हो तो लोग पैदल हो जायँगे। उनमें इतनी क्षमता बनी रहेगी। इतना ही नहीं आगे बढ़कर मेरे जैसे व्यक्ति का व्याख्यान सुनने और देखने के लिए हवाई जहाज पर बैठकर कहीं जाने की आवश्यकता ही न रह जायगी। घर बैठे ही मेरा व्याख्यान सुन सकें और मुझे देख सकें वैसी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। इस तरह विज्ञान-युग में भोग-वासना कम-से-कम होगी और भोग के साधन प्रचुर रहेंगे।

क्या सचमुच भोग-वासनाएँ घटेंगी?

इस पर पूछा जा सकता है कि विज्ञान-युग में भोग-वासना घट ही जायगी यह कैसे सम्भव है? किन्तु यह कोई बात नहीं। विज्ञान-युग में लोग भलीभाँति समझ जायेंगे कि भोगों से इन्द्रियाँ क्षीण होती

हैं। इसीसे भोग मर्यादा में आ जायँगे। लोग अधिक भोग से विरत होंगे। फिर कहीं भी लोग रात-रात तक जागकर सिनेमा न देखेंगे, निःस्वप्न नींद का महत्त्व समझेंगे। आज इंग्लैंड अमेरिका आदि में सप्ताहान्त के अवसर पर कुछ लोग खेतों में जाकर खुली हवा और खुले आकाश का आनन्द लेते हैं। किन्तु फिर कहीं कोई इस मुक्तानन्द से वंचित न रहेगा। उस समय अभी के ये दस-दस, बारह-बारह मंजिले मकान खाली ही पड़े रहेंगे। जो लोग आज गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से नीचे ही नहीं उतरते वे भी समझ जायँगे कि खुले आकाश में कितना आनन्द आता है! विज्ञान-युग में बीड़ी पीकर लोग व्यर्थ में अपना कलेजा न जलायेंगे। जैसे-जैसे विज्ञान की परिपूर्णता होगी, वैसे-वैसे मानव का भी पूर्ण विकास होगा। अगर व्यक्तिगत मालकियत मिट जाय, तो तत्काल समझ में आ जायगा कि काम, क्रोध आदि से शारीरिक शक्ति का कितना दुरुपयोग होता है। जब पूरी समझ होगी, पूरा ज्ञान होगा विज्ञान होगा तभी आप यह अनुभव कर सकेंगे। अभी पूरा विज्ञान-युग आया नहीं है। मैं जो बात कह रहा हूँ, वह आगे की है।

क्षोभ के रहते सवालों का हल कहाँ ?

यह भी पूछा जाता है कि 'आपके मतानुसार मन से ऊपर उठकर बुद्धि की भूमिका पर जाना चाहिए। किन्तु आक्रमण अकाल, अतिवृष्टि आदि अवसरों पर बुद्धि के स्तर पर निर्णय कैसे किये जा सकते हैं ?' इस सम्बन्ध में हमारा यह निश्चित मत है कि जब तक मन में क्षोभ रहेगा तब तक सवालों का हल हो ही नहीं सकता। आज की लड़ाइयों में भी क्षोभ के लिए अवकाश नहीं है। पहले की लड़ाइयों में मन-क्षोभ की गुंजाइश हुआ करती थी। हाथ में तलवार उठाकर दूसरे को मारने के लिए जाते समय क्षोभ पैदा हो सकता था लेकिन आज की लड़ाइयाँ गणित की तरह चलती हैं। हम कदम आगे रखें,

तो आगे रहना पड़ेगा और पीछे रहें, तो पीछे रहना होगा। यानी आज के युद्ध में मरने से काम नहीं चलेगा। ठीक-ठीक वैज्ञानिक और गणित की दृष्टि से चलना होगा। इसमें मनःक्षोभ के लिए गुंजाइश नहीं है। मनःक्षोभ के कारण कुछ क्षण व्यर्थ ही जाते हैं। इसलिए उससे काम जल्दी होता है, यह मानना गलत है।

शिवपुर
२१-१२-'५८

साधना के सोपान १६.

मुझसे पूछा गया है कि 'आपकी सूर्योपासना का क्या आधार है ? इस उपासना का सम्बन्ध वैदिक-कल्पना से है या वैज्ञानिक संशोधन से ?'

मैं आत्मसूर्य का उपासक

यदि व्यक्तिगत रूप में मेरे लिए प्रश्न हो तो मैंने वैदिक साहित्य का अध्ययन काफी किया है और विज्ञान के प्रति भी विशेष प्रेम रखता हूँ। लेकिन मैं तो सूर्य की उपासना करता ही नहीं। जिस तरह पत्री सामने रखकर उपासना नहीं हो सकती उसी तरह उगते हुए सूर्य को आँखों के सामने रखकर उपासना करना चाहें तो वह भी नहीं हो सकती। वास्तव में मैं जो उपासना करता हूँ वह आत्मसूर्य की उपासना है। उसके बारे में वेद में एक छोटा-सा मन्त्र है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। यानी सूर्य स्थावर-जंगमात्मक जगत् की आत्मा है। आत्मा का नाम सूर्य है। इसलिए सूर्य पर भी आत्मा की भावना की जा सकती है। कुरान के एक वाक्य में विशेष प्रकार की श्रद्धा व्यक्त की गयी है और वही मेरी श्रद्धा है। उसमें लिखा है कि 'यदि आप ईश्वर की उपासना करना चाहते हों तो उसने जिन्हें पैदा किया है उनकी उपासना न करें। सूर्य या चन्द्र ये सभी भगवान् ने पैदा किये हैं। इसलिए इनकी उपासना न कर जिसने इन्हें पैदा किया है उसीकी उपासना करें। यानी कर्ता की उपासना करें कर्म की नहीं। मैं भी यही मानता हूँ।

सूर्य-दर्शन का महत्त्व

जब सूर्योदय होता है निःसन्देह उस समय शरीर, इन्द्रिय मन और बुद्धि में प्राण-संचार होता है। इसका जिसे अनुभव हो वह तो इसे स्वीकार कर ही लेगा। लेकिन जिसे अनुभव न हो वह भी

कल्पना से समझ सकता है। इसलिए मुझे तो सूर्योदय का समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता है।

जब हम जेल में थे हमारा काफी समय चर्चा में बीतता था। वहाँ बहुतों को आशा-निराशा या अनेक तरह के दुःखों का अनुभव होता था मुझे वैसा कुछ भी नहीं लगा। एक दिन जेलर ने आकर कहा कि 'आपका जीवन बड़ा ही सुखमय दीख रहा है किसी भी तरह का दुःख मालूम नहीं पड़ता!' मैंने कहा : 'दुःख दीखता तो नहीं पर है अवश्य। सात दिन विचारकर खोज निकालिये कि आखिर मुझे कौन-सा दुःख हो सकता है!' सात दिनों के बाद वह पुनः आया और कहने लगा : 'मैं तो आपको किसी भी तरह दुःखी नहीं पाता।' मैंने कहा : 'सुबह और शाम हमें सूर्य का दर्शन नहीं होता यही मेरा दुःख है और वह दुःख मिटाने का साधन जेल में नहीं है।'

सूर्य : ईश्वर का प्रतीक

सूर्य-दर्शन बहुत ही उत्साहप्रद है। हम उसके निमित्त से ईश्वर की उपासना करें तो अच्छा होगा। इस्लाम में रिवाज है कि काबा की ओर मुँह कर उपासना की जाय। काबा हिन्दुस्तान के पश्चिम में है। इसलिए ये लोग जब उपासना करने बैठते हैं तो सूर्य की ओर पीठ करके बैठते हैं जब कि हम लोगों में (पुराने समाज में) सूर्य की ओर मुँह करके प्रार्थना होती थी। मैं किसी साम्प्रदायिक विचार का निषेध नहीं करता लेकिन मेरा हृदय इसके अनुकूल भी नहीं हो सकता। मुझे सूर्य जैसा दूसरा स्फूर्तिदायक मन्दिर, आश्रम या काबा कोई भी नहीं लगता। यह इतना बड़ा और महान् स्फूर्ति का स्थान है। इसलिए इस ईश्वर का प्रतीक समझकर परमात्मा की उपासना की जाय तो वह अच्छा होगा।

सूर्य ही नहीं, ताराओं से भी हृदय का संबंध

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया है कि चिन्तन के साथ सूर्य उपासना का क्या संबंध है? इस बारे में मेरी यह धारणा है कि सूर्य और हममें एक

संबंध है। उपनिषद् में भी एक वाक्य आता है कि सूर्य किरणें नाड़ियों के मार्ग से हृदय में पहुँचती हैं। सूर्य और हृदय के बीच एक राज-मार्ग बना हुआ है और उस रास्ते यहाँ से वहाँ आ-जा सकते हैं। जैसे सूर्य-किरणें हृदय में आ पहुँचती हैं, वैसे ही हृदय भी सूर्य तक पहुँच सकता है। इसका अनुभव मुझे तो होता ही है। मुझे न केवल सूर्य के बारे में ऐसा अनुभव होता है बल्कि ताराओं के बारे में भी होता है। अभी तक मैं रात में आग्रहपूर्वक खुले आकाश में सोता रहा हूँ। बरसात के दिनों में कुछ समय के लिए कमरे में भी चला जाता। लेकिन कई बार थोड़ा-बहुत भीगकर बाहर ही पड़ा रहता तो पता ही नहीं चलता था कि वर्षा हो रही है। सुबह उठने पर पता चलता कि ऊपर का ओढ़ना भींग गया है याने गहरी वर्षा हुई होगी। इस तरह रात में आकाश दर्शन करने पर यह भी अनुभव होता है कि ताराओं और हमारे बीच भी कोई रास्ता बना हुआ है।

सत्य का स्थान कहाँ ?

तीसरा प्रश्न है : हृदय करुणा और प्रेम का स्थान है, तो सत्य का स्थान कहाँ है ? इस सम्बन्ध में यही समझना चाहिए कि प्रेम और करुणा का आन्तरिक स्थान तो हृदय ही है लेकिन इनका बाह्य स्थान तो सृष्टि है। उसीका प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ता है। इसी तरह सत्य भी सृष्टि में छाया हुआ है और उसका प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ता है जिसमें कि करुणा और प्रेम का भी प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रेम और करुणा की तरह ही सत्य के लिए भी बाहर और भीतर एक ही स्थान है। बाहर सारा विश्व और भीतर हृदय—सत्य प्रेम और करुणा के स्थान हैं।

सत्य-मीमांसा

पूछा गया है कि 'सत्येन लभ्यस्तपसा' इस मन्त्र के विषय में कुछ कहें। पूरा मन्त्र इस प्रकार है :

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥
सत्यमेव जयते नानृतम्
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामाः,
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

वास्तव में यह एक बहुत ही गम्भीर मंत्र है। यद्यपि यह उपनिषद् का मन्त्र है और यह सूर्योपासना के प्रसंग में नहीं कहा गया है फिर भी मैं इसका उपयोग सूर्य-चिन्तन में करता हूँ। इस आत्मा इदय में जैसे आत्मा है वह भी सूर्य है और यह सूर्य भी आत्मा है। जैसे बाहर सूर्य-ज्योति है वैसे ही भीतर सत्य-ज्योति है। हमारे पूर्वज इन दोनों ज्योतियों की उपासना किया करते थे। एक ओर सूर्य प्रतीक था तो दूसरी ओर आत्म प्रतीक। इस मन्त्र का ऐसा अर्थ कर सूर्योपासना की जाय तो सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मा की प्राप्ति के लिए जो चार साधन बताये गये हैं उनमें सत्य सबसे पहला है और वह बहुत ही महत्त्व का है। एक ओर दुनिया का सारा नीतिशास्त्र रक्खा जाय और दूसरी ओर सत्य तो सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य सबसे श्रेष्ठ नीति-धर्म है जब कि अन्य सभी नीति-धर्म उसके समक्ष गौण हैं। इसीलिए उसे प्रथम स्थान दिया गया है। खासकर आत्मप्राप्ति के लिए तो सत्य बहुत ही महत्त्व की चीज है। इस सत्य का अर्थ मनसा वाचा कर्मणा त्रिविध सत्य है केवल वाणी का ही सत्य नहीं। यदि मानव जीवन [illegible] तब तो आत्मा का दर्शन हो जायगा।

[illegible] है। [illegible] को समझने के लिए भी [illegible] है। खासकर यदि इन्द्रियों को

वश में कर लिया जाय, तो उसके द्वारा सत्य तक पहुँचा जा सकता है और वह बहुत सरल हो जाता है। लेकिन यदि इन्द्रियों पर काबू न पाया जाय और हम उनके वश हो जायें तो हमारी स्थिति उस घुड़सवार जैसी हो जाती है जो बैठा तो घोड़े पर है, पर लगाम हाथ में नहीं है। तपस्या में मुख्यतः इन्द्रियों पर काबू पाना ही होता है। इसके बाद सत्य-प्राप्ति के लिए जो प्रयोग करना पड़ता है वह भी उसके (तप के) अन्तर्गत आ जाता है। मानव को बहुत-सी कल्पनाएँ उठती हैं अन्दर से स्फुरित होती हैं किन्तु वे उचित हैं या अनुचित यह समझने के लिए प्रयोग करने पड़ते हैं और उन प्रयोगों के लिए तकलीफ भी उठानी पड़ती है। यही तप है। इस तरह सत्य का प्रयोग करना और उसके लिए कष्ट उठाना ही तप है।

तीसरा साधन 'सम्यक् ज्ञान' है। वस्तु के स्वरूप का आकलन करने के लिए सम्यक् बुद्धि अपेक्षित हुआ करती है। 'सम्यक् बुद्धि' का अर्थ है अनासक्त बुद्धि जिसमें पूर्वग्रह न हो। इस तरह पूर्वग्रह रहित बुद्धि द्वारा ही आत्मा का दर्शन होता है।

चौथा साधन 'ब्रह्मचर्य' बताया गया है। यहाँ ब्रह्मचर्य और तप अलग-अलग बतलाये गये हैं इसलिए ब्रह्मचर्य से मुख्यतः अध्ययन चिन्तन मनन आदि समझ लेना चाहिए। अन्यथा तप का अलग साधन रूप में निर्देश व्यर्थ हो जायगा कारण ब्रह्मचर्य में तप आ ही जाता है। इस तरह विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सत्य एक नैतिक मूलतत्त्व है उसके साथ ये तीन साधन होने पर भी आत्मा का दर्शन हो सकता है।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः। जिस तरह बाहर सूर्यनारायण उदित होता है उसी तरह अन्दर भी सूर्यनारायण उदित है। जैसे बाहरी सूर्य बाहरी बादलों से ढक जाता है तो उसका दर्शन नहीं हो पाता, वैसे ही हृदय पर पर्दा पड़ जाने से आन्तर ज्योति का भी

दर्शन नहीं हो पाता। भास्वर सूर्य अत्यन्त ज्योतिर्मय है। जाने जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश है वैसे ही उसमें भी स्वयंप्रकाशता है।

पश्यन्ति क्षीणदोषाः। यति यानी यत्न करनेवाले संन्यासी। इसका सीधा अर्थ तो 'यत्न करनेवाले' होता है। साधक जब क्षीणदोष होते हैं तभी आत्मा का दर्शन होता है। जब तक दोष हैं तभी तक आवरण रहता है। अतः आत्मा के दर्शन के लिए दोष-निरसन एक उत्तम उपाय है। इस तरह चार साधन बताये गये। इनका उपयोग कर यदि दोष क्षीण हो जायें तो अन्तरस्थित सूर्य का दर्शन हो सकता है।

सत्यमेव जयते नानृतम्। ये अलग-अलग वाक्य मालूम पड़ते हैं लेकिन दोनों मिलकर एक ही वाक्य है। एक ओर कहा जाता है कि सत्य की विजय होती है और दूसरी ओर कहा गया है अनृत यानी असत्य की कभी भी विजय नहीं होती। ऊपर जो साधन बताये गये हैं उनमें सत्य ही प्रधान माना गया है। इसमें भी उसी सत्य पर जोर दिया गया है। देवदर्शन का मार्ग सत्य से फैला हुआ है। 'देवयान' का अर्थ है देवता की ओर जाने का मार्ग अर्थात् परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग सत्य से ही बना हुआ है।

येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामाः। जो ऋषि पूर्णतः निष्काम हैं और जिनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं वे उस आत्मा का दर्शन कर रहे हैं। उनका प्राप्तव्य स्थान सत्य है। वहाँ पहुँचने का मार्ग सत्य है और उस दर्शन से जो प्राप्त होगा वह भी सत्य है। इस तरह चलने का साधन, चलने का मार्ग और पहुँचने की अन्तिम मंजिल तीनों सत्य हैं। सत्य के ही ये तीन अलग-अलग अंग हैं। कुल मिलाकर पूरे मन्त्र का यही अर्थ है।

दोषों के माध्यम से गुणों तक पहुँचें

पूछा गया है कि आप कहते हैं कि आप गुणों की छाया हैं, यह कैसे? इस सम्बन्ध में मेरा मानना है कि गुण और दोषों का प्रकटीकरण

करना सदैव कठिन हुआ करता है। कोई विशेष गुण किसी मानव में हो और वह उसका विकास करे, तो वह एकांगी गुण-विकास होगा। फिर उसके कारण स्वाभाविक ही दोष प्रकट होंगे। मान लीजिये कोई विरक्त पुरुष आग्रही है तो कोई विवेकी। विवेकी कुछ दिखाई रखता है, क्योंकि विवेक में कुछ ढीलापन भी घुस आता है। इस तरह दिखाई का दोष विवेकी पुरुष में आ ही जाता है। हम लोग रेखाओं से चित्र अंकित करते हैं तो उससे पहले कागज सफेद ही होता है। अत रेखायें गुण कहलायेंगी और कागज पूर्व-भूमिका। जिस तरह सफेद कागज की पूर्व-भूमिका के बिना रेखाओं का चित्र उभर नहीं सकता उसी तरह दोष के बिना गुण का प्रकाश नहीं हो सकता। यदि मानव में शुद्ध गुण ही हों तो वे अप्रकट ही रहेंगे। भगवान् भी शुद्ध गुणमय है अतएव वह प्रकट नहीं होता—वह अप्रकट ही है। गुणों को प्रकट करने के लिए छायारूपी शरीर की जरूरत हुआ करती है। इसलिए दोष आवश्यक हैं। अतएव दोषों के उपकार ही मानने चाहिए।

मानव में गुणों के साथ दोष भी हुआ ही करते हैं। आत्मा के प्रकाश के लिए शरीर आवश्यक होता है। इसी तरह गुणों के प्रकाश के लिए दोष आवश्यक ही हैं। कोई स्वतन्त्र प्रकृति बालक हो, तो वह किसीकी आज्ञा नहीं मानता और आज्ञा माननेवाला स्वतन्त्र बुद्धि से विचार नहीं कर पाता। वह श्रद्धावान् होता है पर बुद्धि से विचार नहीं करता। इस तरह गुण के साथ दोष और दोष में गुण मिला ही हुआ है। उनमें छाया कौन है और रूप कौन इसका विवेक करना चाहिए। आत्मा का रूप है गुणमय और दोष है छायारूप। दोनों का अस्तित्व गुणों की सीमा या सौन्दर्य प्रकाशन करने के लिए ही है।

इस तरह हम चिन्तन करें, तो सभी के प्रति अत्यन्त आदरभाव उत्पन्न होता है। किसीमें कोई भी दोष हो तो उसके माध्यम से उसके गुणों तक पहुँच पाते हैं। इस प्रकार शील-स्वभाव का गुण-दर्शन के

साधन रूप में उपयोग करें तो दोष मिट जायेंगे और गुण में प्रवेश करने का साधन हाथ लग जायगा। यह एक विचित्र बात मैं कह रहा हूँ। मान लीजिए कोई बहुत प्रेमी है, तो प्रेम के साथ-साथ काम भी उत्पन्न होने की आशंका रहती है। इसी तरह विरक्ति के साथ क्रोध ज्ञान के साथ आग्रह और भक्ति के साथ मुग्धाभिमत भी होने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुणों के लिए दोष आवश्यक हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दोषी गुणों के लिए अपने दोषों का संग्रह किये रहे। उसे ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो वह दोषवान् ही होगा। किन्तु जब हम दूसरों के लिए सोचें तो उनके दोषों को इसी प्रकार सोचकर माफ कर दें। क्रियाशील व्यक्ति में थोड़ा-बहुत अहंकार रहेगा ही इसलिए उसे आँखों से ओझल कर देना चाहिए। बापू प्रायः कहा करते थे कि 'दुधारू गाय की लात भी खानी चाहिए। इस तरह यदि उस क्रियाशील पुरुष में अभिमान हो तो ऐसा सोचना चाहिए कि 'यदि उसमें इतना अभिमान न होता तो इतनी क्रियाशीलता ही न रह पाती। अतः यह जो अहंकार है वह ठीक ही है इससे कोई हानि नहीं होती। अवश्य ही उसके अहंकार को मिटाने का उचित प्रयत्न करना चाहिए, फिर भी यदि वह रह जाय तो उसे माफ कर देना चाहिए।

साम्यं समाधानम्

साम्ययोग में जीवन-धारणार्थ ममता कैसे रखी जाय? इस सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि ममता के प्रति विवेक रखना अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। इसका महत्त्व तब और भी बढ़ जाता है जब कि हम लोग साम्ययोग की बातें करने लगे हैं। लोग भी ममता का अर्थ [illegible] । [illegible] आत्मरूप तक को [illegible] कि [illegible] अधिक [illegible] ग्रहण [illegible] लेना [illegible]

देता है ! आपके और जनसाधारण के वेतन में इतनी अधिक विषमता किसी तरह सहन नहीं की जा सकती ।

आजकल विभिन्न देशों के बीच स्थूल तुलना की जाती है । कहा जाता है कि अमुक देश में अधिक-से-अधिक आय और कम-से-कम आय में ५ और ४ का अन्तर है । इतना अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए । १ का अन्तर तो खप भी सकता है । इस तरह स्थूल रूप से हिसाब लगाने की एक आदत ही बन गयी है । वास्तव में यह अच्छी बात नहीं । मुझे कोई पूछे कि क्या आपको दस प्रतिशत का अन्तर नहीं चल सकता तो मैं यही कहूँगा कि मुझे जितना अपेक्षित है उतना मिलना चाहिए, किसीकी अपेक्षा दस अधिक क्यों ! इस दस की अधिकता की कल्पना भी गलत है । यदि मैं इतना अधिक पैदा होना चाहिए कि जिसे जितना अपेक्षित हो उतना मिलता रहे और दूसरे के पास कुछ पड़ा हो तो हमें उसकी आवश्यकता ही न पड़े । फिर वह आदमी भी उस अधिक वस्तु को ट्रस्टी के तौर पर अपने पास रखे उसके मालिक के तौर पर नहीं ।

यह एक आर्थिक दृष्टि हुई, लेकिन दूसरी भी एक दृष्टि है । खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने मांसाहार छोड़ दिया तो वे बहुत ही कमजोर हो गये । अतः उनसे आग्रहपूर्वक कहा गया कि आप मांस ले लें तो अच्छा हो । किन्तु उन्होंने इनकार कर दिया । फिर उनके लिए अंडे लाये गये । इस पर बाद में काफी चर्चा हुई । हमारे उन साथियों को जिन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है यह बात बड़ी बेतुकी मालूम पड़ी कि हम लोग मांस खाने की बात कैसे करते हैं ! किन्तु इसके पीछे एक सूक्ष्म दृष्टि है । हम लोग अनन्त जन्मों के यात्री हैं । हमारी इस सृष्टि और इस जिन्दगी में इतना अधिक मोह है कि सभी उसके शिकार हो जाते हैं । लेकिन मैं तो इस मोह का शिकार नहीं हूँ । सोचने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुझे इन सभी मोहों का अनुभव पूर्वजन्म में हो चुका है इसलिए इस जन्म में इनके प्रति कोई उत्साह नहीं रह गया

है। अतः स्वाभाविक क्रम से मैं इससे छूट गया हूँ। दूसरों का घर मोह छूटा नहीं है।

यदि हम सर्वथा समता का आग्रह रखेंगे, तो उसमें लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक सम्भावना रहेगी। सृष्टि की विविधता मिटाकर एकता का अनुभव हो तो वह अद्वैत का अनुभव नहीं कहा जा सकता। हमारे कार्यकर्ताओं में ही जे पी जैसे कितने ही लोग हैं, जिनका जीवन-स्तर औरों की अपेक्षा कुछ ऊँचा है। लोगों को यह अच्छा नहीं लगता और खुद वे लोग आज की अपेक्षा कुछ कम करने का प्रयत्न भी करते रहते हैं फिर भी वह सब नहीं पाता। अतः दूसरों को समझाना चाहिए कि हममें से अमुक-अमुक को पहले से ही अमुक आदत है। उनकी शारीरिक स्थिति देखते हुए अधिक समता लाने का प्रयत्न करेंगे तो वह ठीक न होगा। अपने घर में भी हम ऐसा नहीं करते। घर में एक-दूसरे के प्रति प्रेम रहता है लेकिन सभी के लिए सब कुछ समान होता है ऐसी बात नहीं। घर में हम सब कुछ समाधानपूर्वक ही किया करते हैं। इसके लिए मैंने एक सूत्र ही बनाया है—'साम्यं समाधानम्।' जिसमें सबका समाधान हो वही साम्य है। घर में छोटे बच्चों के लिए अधिकार नहीं, कर्तव्य ही रहता है। माता-पिता ही प्रधान हुआ करते हैं। फिर जब वे बूढ़े और बच्चे जवान हो जाते हैं तो पहले के बच्चे ही प्रधान बन जाते हैं और उन्हींकी बुद्धि से घर का सारा काम चलता है। इस तरह कभी पिता प्रधान तो कभी पुत्र प्रधान होता है। दोनों में प्रेम तो रहता ही है। अतः सृष्टि में प्रेम के कारण जो कुछ करना पड़े उससे साम्ययोग में किसी तरह की बाधा नहीं आती। यदि हम यांत्रिकी साम्ययोग करते जायेंगे तो दुनिया से आनन्द ही मिटा देंगे।

नवावास (बनासकाठा)

४-१-'५९

हमारे देश में तरह-तरह के भेद हैं। लेकिन भगवान् की सृष्टि में कहीं भेद नहीं है। सभी को भूख लगती है तो अन्न की जरूरत पड़ती है प्यास लगती है तो पानी की जरूरत पड़ती है सर्दी में शीत लगता है, तो बचाव की जरूरत पड़ती है; बीमारी होती है, तो दवा की जरूरत पड़ती है। जन्मे जन्म-मरण भूख-प्यास सुख-दुःख सभी में समान है। भगवान् ने हम सबके शरीर एक ही मिट्टी से बनाये हैं और एक ही मिट्टी में जा मिलेंगे। ब्राह्मण हो या शूद्र गरीब हो या अमीर, सभीको एक दिन मरना ही है। फिर परस्पर भेदभाव करने का कारण क्या है ?

मनुष्य ऊधम मचानेवाला !

सभी के शरीर पंचभूतों से बने हैं। हर शरीर में एक-एक आत्मा है और उस आत्मा में कोई भेद नहीं है। इस अभेद के बीच एक मनुष्य ही ऊधम मचानेवाला है। "मैं ऊँचा-तू नीचा मैं गोरा-तू काला मैं पैसा-तू वैसा। ये सारे झगड़े मन के हैं।

हमारा सबसे बड़ा दुश्मन कोई है, तो यह मन है और यदि कोई सर्वश्रेष्ठ मित्र है तो वह भी यही है। सुधारने पर यही सर्वश्रेष्ठ मित्र सिद्ध होता है तो निरंकुश रखने पर सबसे भयंकर शत्रु। इसलिए दुनिया में यदि कुछ कर्तव्य है तो वह सिर्फ मन को सुधारना है। भूदान ग्रामदान सर्वोदय-पात्र नयी तालीम आदि समस्त प्रवृत्तियाँ मन को दुरुस्त करने के माध्यम हैं। मन को दुरुस्त करने के बाद ही आप मुक्त हो सकते हैं।

आज मानव का मन दुरुस्त न होगा तो उसके जीवन में भारी गतिरोध खड़ा हो जायगा। मनुष्य के हाथ में जब लकड़ी थी, तो वह लकड़ी से मारपीट करता था। फिर तीर, कमान और तलवार

मानी तो उसीका उपयोग करने लगा। लेकिन आज भयानक-से-भयानक औजार उसके हाथ आ गये हैं। इस समय मन को निरंकुश रखने पर उन भयानक शस्त्रों को मौका मिल जायगा। फलतः जिस तरह भस्मासुर अपने सिर पर हाथ रखकर खुद ही भस्म हो गया उसी तरह अपने ही बनाये शस्त्रों से मानव-समाज भी समाप्त हो जायगा।

दुनिया की यह दौड़ और हमारी यह संकुचित वृत्ति !

रूस नयी बस्तियाँ बनाने का प्रयत्न कर रहा है। जैसे अंग्रेज, फ्रेंच डच जर्मन आदि राष्ट्रों ने जगह-जगह अपने उपनिवेश बनाये एवं पुर्तगाल ने गोआ को अपनी बस्ती बनाया—जिसे कि आज भी छोड़ने के लिए वह तैयार नहीं—वैसा ही रूस का प्रयत्न रहेगा। रूस चाहता है कि शुक्र, मंगल और चन्द्रलोक में नये उपनिवेश हों। इस लिए उसने सुनियोजित अभियान आरम्भ कर दिया है।

अभी राकेट में बिठाकर एक आदमी को वहाँ उड़ाया गया। उड़नेवालों को ऊपर का वातावरण सहन करने की शिक्षा दी जाती है और ऐसी गोलियाँ भी दी जाती हैं जिन्हें खाने से भूख-प्यास मिट जाय। पहले समुद्र पर जिनकी सत्ता होती थी वे ही पृथ्वी पर सत्ता चलाते थे। अब समुद्र का मूल्य कम हो गया। आज आसमान पर सत्ता चलानेवाले ही पृथ्वी पर सत्ता चलायेंगे। वैज्ञानिक युग की इस तेज रफ्तार में आप संकुचित दिलों से क्या कर सकेंगे ? अतः सभी भेद भाव भुलाकर हाथ पकड़ते हुए उदारता बरतने में ही हमारा कल्याण है।

मालोदा (साबरकांठा)

११ १ '५९

विश्व-नागरिकता जमाने का सही विचार : १८

हिन्दुस्तान में आजादी के बाद जो कुछ हमने छोटा-बड़ा काम किया उसका असर दुनिया पर कुछ-न-कुछ तो हुआ ही। हम किसी गुट में शामिल नहीं होते अपनी स्वतन्त्र हस्ती और विचार रखते हैं—इसकी कद्र सारी दुनिया करती है। यूरोप अमेरिका आदि देशों से और आनेवाले कहा करते हैं कि भारत के बारे में दुनिया के लोग बड़ी आशा रखते हैं। यहाँ की विदेश-नीति बड़ी अच्छी है। उससे दुनिया को शान्ति की राह मिलेगी।

भारत में जो भूदान-ग्रामदान का काम चला है, उससे भी दुनिया के लोगों को लगता है कि इस काम में कुछ ऐसी चीज है, जिससे आज की देश-देश की समस्याएँ हल करने का मार्ग सूझ जायगा। इसीलिए हमारी यात्रा में बीच-बीच में यूरोप अमेरिका एशिया आदि मुल्कों के कई लोग आते हैं। वे हमारे साथ घूमते हैं, अपने-अपने देशों में जाकर ग्रन्थ तथा लेख लिखते और आशा रखते हैं कि दुनिया में शान्ति-स्थापना के लिए इसमें से कुछ तत्त्व अवश्य निकलेगा।

विश्व-नागरिकता की ओर

बचपन में हमें स्कूल में अनेक विषयों का ज्ञान सिखाया जाता था लेकिन हमारा चित्त इसीमें लगा रहता था देश कैसे मुक्त हो और उसके लिए हम क्या करें। बचपन से ही हमारा लक्ष्य भारत को आजाद बनाने का रहा है। किन्तु आज के लड़के तो स्वतन्त्र भारत के विद्यार्थी हैं। इसलिए वे विश्व-नागरिक बन सकते हैं। अब यदि हम अपने देश को ठीक ढंग से बनायें शान्ति की ताकत कायम करें, तो अपना असर कुछ दुनिया पर डाल सकते हैं। अब दुनिया और

हमारे बीच कोई पर्दा नहीं रहा। यहाँ के अच्छे काम दुनिया में फैलेंगे और उसका दुनिया पर असर होगा। बुरे काम का भी दुनिया पर असर होगा। अब हमारे अच्छे-बुरे काम सीमित नहीं रह सकते, बल्कि दुनिया के बाजार में उपस्थित किये जायेंगे। इसलिए हम कदम-कदम पर सोचें और ऐसा काम करें जिससे औरों को भी यह मालूम पड़े कि भारत की ताकत एक काम में जुट गयी है। यहाँ की अमन ३० करोड़ लोगों की जमात अपने देश का वैभव बढ़ाने और कुल दुनिया की सेवा करने के लिए शान्ति और स्वतन्त्रता के स्थापनार्थ अग्रसर हो रही है।

आप दुनिया के केन्द्र में

महाराज अशोक के जमाने में धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम भगवान् बुद्ध ने शुरू किया था। वह कार्य संस्थाओं के जरिये भारत में फैला, किन्तु पिछले दो-ढाई हजार वर्षों में दूसरा ऐसा मौका नहीं मिला, जैसा आज मिल रहा है। फिर अशोक के जमाने में जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया गया वह तो सीमित रहा क्योंकि उस जमाने में विज्ञान नहीं था। लेकिन विज्ञान ने आज प्रचार का दरवाजा खोल दिया है। विचार का संचार फौरन दुनिया में हो जाता है। इसीलिए कहना पड़ता है कि अशोक के जमाने में भी जो मौका हिन्दुस्तान को नहीं मिला वह आज मिला है। अतएव यह मत समझिये कि छोटा-सा हिन्दुस्तान के एक कोने में हैं और दुनिया के साथ उसका सम्बन्ध ही नहीं है। बल्कि यही समझें कि इस समय आप दुनिया के मध्यस्थान में हैं और जो भी काम करते हैं उसका प्रभाव सारे विश्व पर होता है। आप अगर झगड़ते हैं तो इंग्लैण्ड के लोगों को उसकी खबर नहीं है। वह तो वहाँ भी पहुँचता है—हप पहुँचता है स्वार्थ पहुँचता है। इसलिए अब आप कोई ऐसा ठोस कदम उठायें जिससे दुनिया को मार्ग मिले।

हमने अंग्रेजी में एक भी लेख नहीं लिखा। फिर भी जर्मन, फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि में हमारे आन्दोलन की बातें फैल गयीं। कारण स्पष्ट है, दुनिया को उसकी प्यास है। कहीं भी हम कुआँ खोदें तो प्यासे लोग समझते हैं कि इसकी जरूरत है। इसलिए आपके सामने सवाल यही है कि अपने गाँव में कौन-सा ऐसा काम कर रहे हैं, जिससे दुनिया के नागरिक के नाते आप दुनिया को कुछ दे सकें। आप भोजन करते हैं, गाना गाते हैं, सिनेमा देखते हैं और अन्य स्वार्थ भी साधते हैं; लेकिन ये सारी प्रवृत्तियाँ दुनिया के लिए मार्ग-दर्शन का काम नहीं कर सकतीं। विश्व-नागरिकता का विचार ही विज्ञान-युग का वास्तविक विचार है।

रामगढ़

१०-१-५९

महावीर स्वामी को ढाई हजार साल हो गये। लेकिन ऋषभदेव उनसे भी अधिक प्राचीन हैं। यह तीर्थस्थान भी उतना ही पुराना है। ऋषभदेव अहिंसा की बात बताते थे जिसे लोग आज भी याद करते हैं। दूसरे को तकलीफ न देना ही अहिंसा का अर्थ नहीं। अहिंसा का मतलब है जितना प्रेम हम खुद पर करते हैं, उतना ही प्रेम भगवान् की सारी सृष्टि पर करें। अपने पड़ोसी पर भी उतना ही प्यार करें। यह बात हिन्दुस्तान में सभी लोगों को प्रिय है। अनेक सन्तों ने इसे दुहराया और समझाया है कि अपने समान सबको देखना और मानना चाहिए। एक विचार के तौर पर इसे सब लोग मानते हैं। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो इसे कबूल न करता हो। किन्तु कबूल करना एक बात है और उस पर अमल करना दूसरी बात।

पड़ोसी पर समान प्यार करें

अहिंसा के आचरण का सवाल उठते ही हम कहने लगते हैं कि बात तो ठीक है पर हम पर हम अमल नहीं कर सकते। हम गृहस्थ हैं, संसारी हैं, बाल-बच्चेवाले हैं। हमारी आदतें बन चुकी हैं। इस-लिए हम पड़ोसी पर इतना प्यार नहीं कर सकते जितना अपने बाल-बच्चों पर और अपने शरीर पर करते हैं। इतना प्यार करना इस जन्म में सम्भव नहीं। हमारे पुरखों ने भी तो यही कहा है कि अपने मनव पर प्यार करो। यह चीज हम पसन्द करते हैं और उनकी सब बात मान भी लेते हैं। ऐसा कोई महापुरुष हमें मिल जाय जिसके आचरण में यह बात हो, तो उसकी हम इज्जत करेंगे, पूजा करेंगे और उसके स्थान में प्यार का पावन भी मानते हैं। परन्तु यह

चीज महापुरुषों के लिए, संन्यासियों के लिए भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए, श्रमण-श्रमणियों के लिए है।

शास्त्रकारों के सामने सवाल आता है कि इस प्रकार किसी विचार का लोग आदर करें किन्तु उस पर अमल न करें, तो शास्त्रों का क्या काम होगा? इसलिए उन्होंने एक बीच की राह निकाली ताकि लोगों को अपने समान आहिस्ता-आहिस्ता सब पर प्यार करने की तालीम मिल सके। एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ें आरोहण करें तो ऐसा एक रास्ता बन जायगा। राह खुल जायगी और लोग दूसरों पर प्यार करना सीखेंगे। हम सभी प्राणियों पर अपने जितना ही प्यार करेंगे सारी सृष्टि पर अपने समान प्यार करेंगे। जैसे एक तारा नजर के सामने रखकर चलते हैं वैसे ही ध्येय को देखकर चलना है। तारे पर पाँव नहीं नजर रखते हैं और चलते हैं जमीन पर, वैसे ही उस दिशा में हम चलें या दिशा शास्त्रकारों ने बतायी है। उन्होंने कहा है कि अपने समान सारी सृष्टि को देखो और सबसे प्रेम करो। पहले अपने पड़ोसी पर अपने समान प्यार करो। अपने गाँव पर अपने समान प्यार करो। यह पड़ोसी अपना ही है यह गाँव अपना ही है।

कुटुम्ब का विस्तार कीजिये

आज हम पास-पास रहते हैं पर एक-दूसरे की भलाई नहीं सोचते। गाँव में कोई बीमार हुआ जख्मी हुआ तो उसे दुःख में सान्त्वना देनी चाहिए। गाँव की भलाई के साथ हमारा भी भला होगा। अगर गाँव की बुराई हुई तो हमारी भी बुराई हो सकती है। गाँव में कोई बीमारी आयी तो वह हमारे घर में भी आ सकती है। एक को दुःख हुआ तो दूसरे को भी दुःख हो सकता है। गाँव में अच्छी बारिश हुई, तो सबकी फसल बढ़ सकती है। इस तरह गाँव में सबका भला और सबका बुरा एक साथ ही चलता है। इसलिए गाँव को अपना कुटुम्ब का एक विस्तार समझें।

जिसे हम शरीर कहते हैं, वह हमारा विस्तार है, हम नहीं। हम तो शरीर के अन्दर रहनेवाले हैं अन्तरात्मा में रहनेवाले और इन्द्रियों से काम लेनेवाले हैं। जिसे संस्कृत में 'तनय' कहते हैं वह हमारे शरीर का ही फैलाव है। हमारे शरीर का ही तनाव हमारा बच्चा है। इस तनु का विस्तार ही तनय है। उस बच्चे का भी बच्चा होता है यानी उसका भी विस्तार होता है। इस तरह स्पष्ट है कि जैसे हम शरीर नहीं हैं—यह हमारा विस्तार है वैसे ही बच्चा भी हमारा विस्तार ही है। 'सन्तान' शब्द भी 'तनु' धातु से बना है। जैसे सन्तान तनु का विस्तार है वैसे ही हमारा समाज भी हमारा ही विस्तार है, यह समझें और उस पर प्यार करना सीखें। क्या हम यह कर सकते हैं? 'अपनी शक्ति के अनुसार हम कर सकते हैं' यह इसका उत्तर नहीं है। इसका उत्तर देने का समय अब आया है। मेरे सामने बहुत-से माता-पिता बैठे हैं। अगर उनसे कहा जाय कि 'तुम्हारे बालक तुम्हारा ही विस्तार हैं इसलिए उन पर वैसा ही प्यार करें, जैसा अपने पर करते हैं। क्या यह कर सकते हैं? यह काम कठिन है या आसान?' तो माताएँ कहेंगी : 'तुमने बहुत कम ही माँग की है। हम इससे ज्यादा कर सकती हैं। हम अपने बच्चों पर अपने से ज्यादा ही प्यार करती हैं। क्या इस तरह आप ऐसी सिखावन देना चाहते हैं कि हम उन पर कम प्यार करें? और, इस तरह ज्यादा प्यार करने की बात छोड़ दें। वह तो माताओं के नाम पुण्य लिखा जायगा! लेकिन जैसे वे बच्चे पर प्यार करती हैं वैसे पड़ोसी पर भी प्यार करें। हम अपने बच्चों पर जो प्यार करते हैं उसका विस्तार करने की जरूरत है वैसा ही प्यार सारे समाज पर करने की तालीम हमें मिल रही है। शास्त्रकारों ने जिसे अहिंसा कहा था बीच की राह दिखाई थी उस पर हम चलें तो आगे-आगे सारी सृष्टि पर वैसा ही प्रेम कर सकते हैं।

अहिंसा का क्या अर्थ है? 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'—सब भूतों पर

उतना ही प्यार करो जितना अपने घर को करते हो। घर के समान पड़ोसी को समझो और घर के समान ही ग्राम को समझो। यदि कोई यह कहे कि यह उपाय बहुत कठिन है तो उससे मैं कहूँगा कि तुम्हारा मन इस जमाने के लायक नहीं है। विज्ञान का जमाना है। विज्ञान के जमाने में दूर देशों के लोग भी नजदीक आते हैं और आये हैं। देशों के बीच के अन्तर टूट रहे हैं। आज ऐसे साधन हाथ में आ गये हैं कि २४ घंटे में दुनिया के इस सिरे से उस सिरे तक जा सकते हैं। यह पृथ्वी २४ हजार मील के घेरेवाली है। ऐसे साधन हवाई जहाज हाथ में आ गये हैं कि २४ घंटे में कुल पृथ्वी की प्रदक्षिणा की जा सकती है। ऐसे विज्ञान के जमाने में 'सारे गाँव को एक परिवार मानना कठिन है' यह कहनेवाले से यही कहा जायगा कि तुम इस जमाने के लायक नहीं। तुम इस युग में टिक न सकोगे।

यह परमार्थ नहीं, विज्ञान की बात है

यह बात पारमार्थिक नहीं है। सीधी-सी बात है। सारे गाँव को इकाई समझो परिवार मानो और तदनुकूल आयोजन करो। अगर हम इतना भी न कर सके, तो इस जमाने में हम जीने लायक नहीं हैं। दुनिया के दूसरे देशों में क्या-क्या हो रहा है वहाँ विज्ञान कितना आगे बढ़ा हुआ है क्या-क्या हलचलें वहाँ चल रही हैं यह सारा हम नहीं जानते। परन्तु हमें सारा जानना होगा। इसलिए फिलहाल हमारी कम-से-कम यही माँग है कि अपने पड़ोसी के साथ प्यार करो, गाँव को परिवार समझो। यह इस जमाने की बात है। अगर कोई भी अखबार का पन्ना खोलकर देखिये बड़े-बड़े अक्षरों में कौन-सी खबरें मिलेंगी ? दुनिया की बड़ी-बड़ी खबरें—अमुक राष्ट्र, चन्द्र पर कोई [illegible] है रॉकेट छोड़ा गया है एक हजार मील ऊपर गया है उसके और चन्द्र के बीच इतना इतना अन्तर है आदि आदि। इनसे दुनिया छोटी बन रही है इतनी [illegible] बन रही है।

पृथ्वी की कुछ खबरें पृथ्वी के कुल देश के लोग पढ़ते हैं और उन्हें जानने में उत्सुकता भी बताते हैं। ऐसे जमाने में आप गाँव को परिवार न समझें और प्रेम का विस्तार न करें तो मैं कह देता हूँ कि आपका प्रलयकाल नजदीक आया है। आपकी हस्ती खतम होने आयी है।

मैं बहुत बड़ा आध्यात्मिक कदम उठाने के लिए नहीं कहता। इतना ही कहता हूँ कि प्रेम को आपने घर में बन्द रखा है, वह खोल दें व्यापक बनायें ताकि ग्राम-समाज बने। इतना तो बनना ही चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि गाँव में रसोड़ा एक हो। ऐसी फिजूल बातें नहीं करनी चाहिए। हम कोई कुटुम्ब-व्यवस्था खड़ी करना नहीं चाहते। जहाँ तक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का सवाल है वहाँ तक गाँव एकरस हो और प्रेम का स्थान माना जाय। घर में क्या होता है? पुरुष एक रुपया कमाता है, स्त्री बारह आना, लड़का आठ आना और लड़की चार आना तो वह सारी कमाई सारे घर की मानी जाती है। लड़की चार आना कमाती है, इसलिए चार आने का खायेगी और पुरुष एक रुपये का खायेगा—यह कानून हम घर में नहीं लागू करते। घर में प्रेम का कानून चलता है जिसमें सारी कमाई सारे घर की मानी जाती है। उसमें तो जो नहीं कमा सकता उसका भी हक है। इस तरह घर में हम व्यवहार करते हैं। वैसी व्यवस्था घर में है वैसी ही गाँव में करनी है यही अहिंसा का सन्देश है।

भ्रामदेव (राजस्थान)
१०-३-'५९

विज्ञान की बुनियाद अहिंसा हो २०

मुझसे पूछा गया है कि विज्ञान को अपनाने के लिए हमें ग्रामोद्योगी योजनाओं में प्रत्यक्ष क्या करना चाहिए? इस सम्बन्ध में मेरा विचार यह है कि अहिंसा और विज्ञान के साथ समन्वय होने से ही 'सर्वोदय' होता है। अहिंसा के बिना शोषण-मुक्त समाज की रचना नहीं हो सकती। विज्ञान के अभाव में समस्त लोगों को रोजी मिलना लगभग असंभव है। विज्ञान रोजी बढ़ा सकता है किन्तु उसमें शोषण घटाने की क्षमता नहीं है। शोषण घटाने की क्षमता मनुष्य की योजना पर निर्भर करती है। इसलिए योजना अहिंसा की हो और उसके साथ विज्ञान का मेल हो तभी 'सर्वोदय' होगा।

अनुकूल औजार मात्र

रोजी देने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए हम औजारों का इस्तेमाल करें। वे औजार ऐसे हों जिनसे सबको काम तो मिले किन्तु अधिक परिश्रम न पड़े। हर मनुष्य को दस घंटे काम देने की योजना की जाय तो वह असफल होगी। इतने घंटे काम करना हर मनुष्य के लिए संभव नहीं है और न उचित ही है। इसलिए मनुष्य का श्रम बचना चाहिए, उत्पादन बढ़ना चाहिए और कोई बेकार भी न होना चाहिए। हमारी इस दृष्टि के अनुकूल जो भी औजार हों हम उनका उपयोग करें। खेती के लिए आज अच्छे-से-अच्छे औजार हैं उनका व्यवस्थित उपयोग किया जाय तो जो उत्पादन अभी है उससे चार पाँच गुना उत्पादन सहज ही बढ़ सकता है।

रस्सी बटनी ही लीजिये। यह हाथों से बटने के बजाय औजारों से बटी जाय, तो उतने ही समय में पाँच गुना बट सकते हैं। छह गुना भी बट सकते हैं। चार गुना तो स्वयं मैंने ही बटी है। इसी तरह सीने का काम भी है। हाथ से सीने में जो कठिनाई होती है, उसका

निराकरण 'सिंगर-मशीन' से किया जा सकता है। इसलिए वह मशीन उपयोग में अवश्य लायी जाय। कठिनाई दूर करने के बदले कौम काम से ही भागते हैं। आजकल सिलाई का काम बहनों से पुरुषों ने ले लिया है। ऐसा क्यों? मशीन के माध्यम से सिलाई का काम बहनें आसानी से कर सकती हैं।

बुनाई का काम भी एक आवश्यक उद्योग है। हाथ से बुना जाय, तो ठीक ही है। अन्यथा क्षेत्रीय उपयोग के लिए 'पावर' का उपयोग किया जाय तो भी हर्ज नहीं। मैं तो अणु-शक्ति की भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अणु-शक्ति विकेन्द्रित हो सकती है। गाँव-गाँव में विकेन्द्रित अणु-शक्ति का उपयोग हो सकता है। अगर वैसा हो तो मैं स्वयं स्वागत करूँगा। अणु-शक्ति का उपयोग उत्पादन-शक्ति कर दूसरे का शोषण करने में किया जाय तो गलत है। इसलिए अणु-शक्ति प्राप्त कर दूसरे क्षेत्र का शोषण न करें तो मुझे उसके उपयोग में भी कोई विरोध नहीं।

बिजली के उपयोग की मर्यादा

आज परंधाम-आश्रम से लड़के आये थे। परंधाम में बिजली आयी है। मैंने उन लड़कों से कहा कि बिजली का पूरा उपयोग होना चाहिए। रात में प्रकाश के लिए मैं उसका उपयोग नहीं चाहता। उसका मुख्य उपयोग उद्योग के लिए होना चाहिए। पानी खींचने, प्रेस चलाने आदि कामों में बिजली का उपयोग कर सकते हैं। मैंने उनसे पूछा कि रसोई में उपयोग कर सकते हो या नहीं? वे कहने लगे: थोड़ा मुश्किल होता है। हमने रोटी बनाने में सौ-दो सौ व्यक्तियों का भोजन बनाने में अच्छा उपयोग हो सकता है।

हाथ से आटा पीसने की प्रवृत्ति तो अब लगभग समाप्त हो रही है। हाथ से आटा पीसा जाय तो सर्वोत्तम है। यदि न पीस सकें तो यंत्र से पीसा जाय तो उसमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। सिर्फ उसकी गति कम रखी जाय, ताकि उष्णता से अनाज को हानि न

है। आज आटा पीसनेवाली चक्कियों में इतनी गति होती है कि उससे अनाज की शक्ति क्षीण हो जाती है। एक दृष्टि से मैं इसे गुनाह मानता हूँ। किन्तु कम गतिवाले यंत्र हों, किसीका शोषण न होता हो और वे गाँव की सामूहिक चीज हों तो मुझे ऐसे यंत्रों का कोई उज्र नहीं। इस तरह मेरा मन पहले से ही बना है।

खादी यंत्र से बनायी जाय

बापू के साथ भी एक दफा इस तरह की चर्चा हुई थी। बहुत पुरानी बात है। मेरे पिताजी मगनवाड़ी में आये थे। वे वहाँ सात दिन रहे थे। उनको वहाँ बहुत अच्छा लगा। लेकिन उन्होंने कहा कि यह जो खादी बनायी जाती है वह हाथों से बनाना गलत है, यंत्रों से बननी चाहिए। मेरे पिताजी एक वैज्ञानिक थे। उनकी कुल जिन्दगी विज्ञान की खोज में गयी थी। बचपन में वे मुझे विज्ञान सिखाते थे। विज्ञान के बारे में पिताजी से मेरी रोज चर्चा चलती थी और माँ के साथ भक्ति की। इस तरह विज्ञान और भक्ति दोनों की चर्चा बचपन से मैं रोज सुनता आया हूँ। मेरे पिताजी ने मेरे हाथ से विज्ञान के कई प्रयोग करवाये। उन्होंने जो-जो बातें बतायीं, उन्हें बापू को सुना दिया। मेरे पिताजी को सब लोग 'बाबा' कहते थे। मैंने बापू से कहा कि 'बाबा कह रहे थे कि कागज की खादी यंत्र से बनाने में कोई दोष नहीं है। यह बात सुनकर बाबा बड़ौदा चले गये। उस समय वे वहाँ रहते थे। वहाँ जाकर उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा। उसके अंत में लिखा कि 'यह पत्र जो मैंने लिखा है इसका सभी कुछ मैंने बनाया है। कागज भी मैंने बनाया है स्याही भी मैंने बनायी है और लेखनी, जिससे मैं पत्र लिख रहा हूँ, वह भी मैंने बनायी है। इस तरह कुल-का-कुल पत्र स्वावलम्बी है। इस कागज में थोड़ा-सा दूसरा रंग रह गया है बिलकुल सफेद कागज नहीं है। उस रंग को हटाने के लिए मेहनत पड़ती है। इसलिए मैंने उसको रहने [illegible] होती। इस तरह एक व्यक्ति ने

दूसरे व्यक्ति की मदद लिये बिना पूरा-का-पूरा कागज हाथ से बनाया, उसमें जो छपाई की वह हाथ से बनायी हुई थी यंत्र से बनायी हुई नहीं थी। उन दिनों बापू के साथ काफी चर्चा हुई थी कि छपाई का क्या किया जाय? बापू की मृत्यु के दो-चार साल बाद यही चर्चा फिर से निकली थी। अब तो शायद छपाई यंत्र से ही बनती है।

यह भी खादी ही है!

चरखे की जगह जब अम्बर चरखा आया तो उसका स्वागत किया जाय या नहीं इस पर चर्चा चली। मैंने तो उसका पहले से ही स्वागत किया था। यद्यपि सर्व-सेवा-संघ के विचारकों ने उसे पहले ठीक नहीं समझा और वह ठीक भी था। एकदम नये विचार का स्वागत होता है तो उसमें खतरे भी पैदा हो सकते हैं। मैंने कृष्णदास से कहा कि सर्व सेवा-संघ में चर्चा चलती है वह कुछ दिन चलेगी। परन्तु मेरी ओर से अम्बर चरखे का पूर्ण स्वागत है। फिर कृष्णदास ने जोर लगाया। अभी मैंने साबरमती में देखा कि उन्होंने बहुत अच्छी प्रगति की है। वे उस चरखे को गृहोद्योग के लिए उपयोगी साधन बनाना चाहते हैं। धुलिया में एक गुजराती भाई हैं उन्होंने अपने घर में 'अम्बर चरखे' को बिजली लगायी है। उस पर एक मनुष्य कातता है और अपने घर के लिए पर्याप्त कपड़ा बना लेता है। उन्होंने मुझसे पूछा कि 'क्या यह खादी मानी जायगी?' मैंने कहा 'जी हाँ। अगर आप इसे नहीं बेचते तो यह जरूर खादी मानी जायगी। आप स्वावलम्बन के लिए बिजली का उपयोग कर सकते हैं।' इस प्रकार यन्त्रों का और विज्ञान का उपयोग आचारों की दुरुस्ती और औजारों को पावर लगाने में हो सकता है। परन्तु उसमें भी मर्यादा आती है। एक तो यह कि उसमें आन्तर-बाह्य शोषण न हो। दूसरा योजनापूर्वक सुधार हो।

फतेहनगर (राजस्थान)

भारत ही विज्ञान का एकमात्र अधिकारी : २१ :

हमारा देश बहुत पुराना है और दुनिया में इसकी अपनी विशेषता है। दुनिया जानती है कि भारत द्वारा कभी भी दूसरे देशों पर आक्रमण नहीं हुआ। जिस वक्त भारत में चक्रवर्ती राजा और सम्राट् थे भारत विद्या और कला से सम्पन्न हो ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचा हुआ था तब भी उसके द्वारा दूसरे देशों पर आक्रमण होने का एक भी उदाहरण नहीं है। भारत कोई छोटा-मोटा नहीं बहुत बड़ा लम्बा-चौड़ा विशाल देश है। फिर भी इतने बड़े देश के इतिहास में विदेशों पर आक्रमण करने की एक भी घटना नहीं घटी। यहाँ से विद्या और धर्म का सन्देश लेकर जो भारतीय चीन जापान लंका तिब्बत ब्रह्मदेश और मध्य-एशिया गये, वे साथ में कोई शस्त्र लेकर नहीं गये और न कोई सत्ता लेकर ही गये। वे केवल ज्ञान-प्रचार के लिए गये और थोड़े-से व्यापारी व्यापार के लिए भी गये। लेकिन कभी भी, कहीं से यह शिकायत नहीं आयी कि भारत ने दूसरे पर विचार का भी हमला किया। भारत अपनी सत्ता दूसरे देश पर चलाना तो चाहता ही नहीं, परन्तु विचार का भी हमला उसने कभी नहीं किया। केवल विचार समझाकर ही सन्तोष रखा। यह भारत की एक बड़ी खूबी है। भारतीय इतिहास की यही खूबी हमारे लिए बहुत गौरव की बात है। आज वर्षों बाद—ठीक बोलना हो तो कोई दो हजार साल बाद—भारत को यह मौका मिल रहा है कि सारे भारत में हम अपनी सभ्यता को और भी उज्ज्वल रूप में पेश करें और यह दिखा दें कि आज के विज्ञान-युग में, विज्ञान के लायक अगर कहीं का विचार है तो भारत का ही विचार है।

सदैव मुक्त-चिन्तन का पक्षपाती

हिन्दुस्तान में हमने किसी एक पुरुष के नाम से धर्म नहीं चलाया। यह इस देश के लिए अभिमान की बात हो सकती है। अगर हम उनका नाम लेकर, उनके कार्य को आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा करते हैं तो उनके नाम का गौरव हो सकता है। फिर भी हमने किसी भी महापुरुष के नाम के साथ अपने विचार को नहीं बाँधा, जैसे कि ईसा ने ईसाई-धर्म को 'क्राइस्ट' के साथ बाँध दिया है। हम ईसा का भी नाम बड़े गौरव के साथ लेते हैं क्योंकि महापुरुषों में हम फर्क नहीं करते। फिर भी वे कितने भी बड़े हों, हम यह मानने को राजी नहीं कि किसी एक महापुरुष के जरिये ही हम भगवान् के पास पहुँच सकते हैं। हमारा और भगवान् का सीधा सम्बन्ध हो सकता है। हमारे बीच ऐसी किसी एजेन्सी की आवश्यकता नहीं। अतएव हम भारतीयों ने हमेशा मुक्त-चिन्तन किया है। हिन्दुस्तान के दर्शन ने विज्ञान के साथ कभी झगड़ा नहीं किया। शंकराचार्य ने तो यहाँ तक कह रखा है कि यदि साक्षात् श्रुति भी 'अग्नि ठंडी है' ऐसा कहे, तो हम उसे मानने के लिए बाध्य नहीं। अर्थात् विज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभव की जो बात होगी उसके विरुद्ध वेद भी नहीं बोलते और न बोलना चाहते हैं।

धर्म-विचार विज्ञान से अविरुद्ध

इतिहास के जानकारों को मालूम है कि यूराप में धर्म और विज्ञान के बीच बाकायदा लड़ाई चली। विज्ञान ने कहा कि 'पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमती है' तो वहाँ के धार्मिकों ने उसका यह कहकर विरोध किया कि 'यह बात हमारे धर्मशास्त्र के विरुद्ध है'। विज्ञान का वहाँ ज्यादा-से-ज्यादा विकास हुआ वहीं उसका घोर विरोध भी हुआ। विज्ञान का धर्मवालों के खिलाफ खड़ा होना पड़ा और धर्मवालों ने भी विज्ञानवालों का खून बहाया। यहाँ तक कि किन्हीं को जेलों में डाला और मारा भी। ईसाई सम्प्रदायों और पोप की तरफ से उन्हें

बहुत ज्यादा तकलीफें भोगनी पड़ीं। गैलिलियो को इसलिए जेल में रखा गया कि वह यह कहे कि 'पृथ्वी नहीं घूमती'। लेकिन वह समझता था और उसके प्रयोगों ने उसे दिखा दिया था कि पृथ्वी तो घूमती रहती है। आखिर उसे जब बहुत सताया गया तो उसका दिल थोड़ा कमजोर होने लगा। लेकिन उसकी विवेक-बुद्धि जाग्रत हो गयी और उसने कहा : "नहीं, मैं चाहता हूँ कि पृथ्वी न घूमे। लेकिन वह घूमती है, क्या करूँ! इसलिए मैं नहीं कह सकता कि पृथ्वी नहीं घूमती"— It moves and moves and moves, notwithstanding myself it moves'

किन्तु हिन्दुस्तान में धर्म-विचार से विज्ञान के साथ ऐसा कोई विरोध नहीं आया। ज्ञान-शिरोमणि शंकराचार्य ने जाहिर कर दिया कि 'ज्ञानं न पुरुषतन्त्रम्, किन्तु वस्तुतन्त्रम्' याने ज्ञान मनुष्य की मर्जी पर नहीं वस्तु के स्वरूप पर निर्भर है। इसलिए वस्तु-स्वरूप के बारे में किसीकी आज्ञा नहीं चल सकती। वस्तु-स्वरूप के सामने सारी आज्ञाएँ कुण्ठित हो जाती हैं। वस्तु का स्वरूप वस्तु ही निश्चय करेगी मनुष्य-बुद्धि नहीं। इसी तरह मनुष्य यह नहीं मान सकता कि 'वर्तुल वर्तुल नहीं त्रिकोण है और त्रिकोण वर्तुल है'। त्रिकोण का स्वरूप त्रिकोण पर निर्भर है तो वर्तुल का स्वरूप वर्तुल पर। 'पृथ्वी का स्वरूप पृथ्वी पर और सूर्य का स्वरूप सूर्य पर निर्भर है। मेरी मर्जी मेरे वाक्यों या मेरे ग्रन्थों पर निर्भर नहीं। शंकराचार्य ने यह कहकर मानो विज्ञान के लिए 'अभयदान' ही दे दिया कि 'विज्ञान! खुलकर सामने आओ, हमारे धर्म-विचार से तुम्हारा कोई विरोध नहीं'। इस तरह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान में धर्म-विचार से विज्ञान का कभी भी विरोध नहीं माना गया। अब भारत के सामने मौका है कि वह दिखा दे कि भारत का धर्म-विचार वैज्ञानिक है और हम विज्ञान का स्वागत करते हैं। हम चाहते हैं कि विज्ञान खूब आये। उससे भारत का विचार परिपुष्ट होनेवाला है। हमारा आत्मज्ञान या

वेदान्त-दर्शन को, जिसका दर्शन इस भारत-भूमि में हुआ था, विज्ञान से बल मिलेगा। वह कुण्ठित नहीं होगा। विज्ञान से हमारा धर्म कुण्ठित होनेवाला नहीं है।

हमारा ईश्वर कर्म-सापेक्ष

यूरोप में यह धर्म-विचार चला कि 'परमेश्वर' एक सृष्टिकर्ता है और दुनिया के किसी एक कोने में बैठ, वहीं से सारी दुनिया पर राज्य करता है। लेकिन हमारे दार्शनिकों का मत है कि हमारा परमेश्वर ऐसा सुल्तान नहीं है। हमारा ईश्वर तो कर्म-सापेक्ष है। वह बारिश की मार्फत बरसेगा लेकिन खेती हम ही करेंगे। वह हमारे कर्तृत्व के खिलाफ नहीं जा सकता। वह तो कर्म का फल देकर मुक्त रहेगा। किसी पर कोई चीज नहीं लादेगा। शास्त्रकारों ने कह दिया कि हम किसीको भी दुनिया का पति परमेश्वर या बादशाह नहीं मानते। ऐसे पति को मानना अधर्म है। हमारा ईश्वर एक कोने में नहीं, घट घट में विराजमान है। वह अन्तर्यामी है, जो हमारे हृदय में रहता है हमारी अन्तःप्रेरणा के अन्दर छिपा है। इस तरह हमारे आगे एक मैदान खुला पड़ा है। अगर विज्ञान पर किसीका अधिकार हो सकता है और विज्ञान का आनन्द निर्भयता के साथ कोई हासिल कर सकता है, तो हिन्दुस्तान ही कर सकता है।

सह-अस्तित्व का आदर्श

हिन्दुस्तान आक्रमण में नहीं प्रेम में विश्वास रखता है। भारत में शक हूण आर्य यहूदी पारसी ईसाई चीनी जापानी सभी आये। हमने सबको कबूल किया सबको बसाया सब पर प्यार किया सबका 'एडजस्ट' किया। हमने 'सह-अस्तित्व' की कल्पना हिन्दुस्तान में बतायी। आज हिन्दुस्तान के 'पंचशील' का नाम सारी दुनिया में बोला जा रहा है। पंचशील का अर्थ है जीवन में विविधता को सहन करना। यही भारतीय संस्कृति है। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने-अपने अलग जीवन हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति

बता रही है कि वैश्य या शूद्र को मुक्त होने के लिए ब्राह्मण बनने की जरूरत नहीं। निष्काम भावना से वे अपने-अपने कर्म में रत रहेंगे वे उसी कर्मयोग से परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।' अपने-अपने कर्म में तत्पर रहकर निष्काम भावना से भगवत्-पूजा समझकर व्यापार करनेवाले व्यापारी भी मुक्त हो सकते हैं। हमारा धर्म बतलाता है कि व्यापारी अपने लिए नहीं दूसरों के लिए पैसा रखें और स्वयं उसके ट्रस्टी बनें। इस तरह यदि ट्रस्टी बनकर उसका उपयोग करते हों तो व्यापार और धन-संग्रह करते हुए भी वे परमेश्वर के पास पहुँच सकते हैं मोक्ष पा सकते हैं। यह बहुत बड़ी बात थी। यही सह-अस्तित्व (Co-existence) है। यानी यहाँ दुनियाभर की भिन्न-भिन्न जमातें रह सकती हैं अपना-अपना जीवन जी सकती हैं। अपने-अपने देवता की भक्ति कर सकती हैं अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों का पठन कर सकती हैं। एक-दूसरे के साथ टकराने का कोई कारण ही नहीं। इसी तरह सभी प्रेम और निष्काम भाव से समाज की सेवा करके क्यों तो मुक्त हो भी सकते हैं। कोई कारण नहीं कि जीवन का एक ढाँचा दूसरों पर लादा जाय।

विचार लादने का प्रश्न ही नहीं

एक भाई ने हमसे पूछा : "आपका यह ग्रामदान तो दीखने में बड़ा उमदा दीखता है लेकिन शायद लादा जा रहा है यानी यदि आप 'जमीन समाज की' कहते हैं तो मनुष्यों को अपने-अपने ढंग से जीने की सहूलियत रहेगी या नहीं ?"

हमें ऐसे प्रश्नों से खुशी होती है। हम चाहते हैं कि सद्-विचार में भी अगर कोई असत् अंश रह गया हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। कितने भी बड़े सद्-विचार को हम वैसा-का-वैसा निगलने के लिए तैयार नहीं विचार की छानबीन ही करना चाहते हैं। बहुत-से लोग ग्रामदान का नाम सुनकर खुश हो जाते और कहते हैं

कि अब तो बाबा जमीन की मालकियत मिटाने की बात करता है। अब जमीन सबकी हो जायगी। कुछ जमीन इकट्ठा कर सहकारी खेती के बड़े-बड़े प्रयोग किये जायँगे। फिर बाबा से पूछा जाता है कि 'क्या आप ऐसा करनेवाले हैं ?' मैं कहता हूँ। ऐसा कर भी सकते हैं और नहीं भी। ग्रामदान में हम 'भी-वादी' हैं 'ही-वादी' नहीं। याने यह भी होगा और वह भी होगा। गाँववाले जिस तरह सोचेंगे उस तरह होगा। ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य की भावना है। गाँववाले अपने-अपने गाँव में मिल-जुलकर जो व्यवस्था करेंगे वही व्यवस्था चलेगी। उन पर बाहर से कोई व्यवस्था लादी नहीं जायगी। अगर वे अलग अलग खेती करना चाहेंगे तो अलग खेती कर सकेंगे और यदि दो-चार-दस इकट्ठा होना चाहें या सारे गाँव का इकट्ठा करना चाहें, तो वैसा भी कर सकेंगे। सबकी आवाज एकमत से काम करेगी। अगर भिन्न आवाज हुई तो दोनों प्रकार के प्रयोग चलेंगे। लेकिन मालकियत गाँव की रहेगी और परिणामस्वरूप गाँव-गाँव में स्वराज्य आयेगा।

एक होम में ही विज्ञान की उपयोगिता

जब हम गाँव में ग्राम-स्वराज्य का संकल्प करते हैं जमीन सबकी बनाते हैं तो हरएक को थोड़ी-थोड़ी जमीन देते हैं। जिनको ज्यादा जमीन नहीं दे सकते उन्हें ग्रामोद्योग देते हैं और गाँव की मुख्य जरूरतें गाँव में ही पूरी करने की योजनाएँ करते हैं। तभी हम अपने गाँव में पूरा अनाज पका सकते हैं और आवश्यक अनाज अपने पास रखकर बचा अनाज शहरों को दे सकते हैं। हम शहरों को भूखों मारना नहीं चाहते क्योंकि हिन्दुस्तान में अनाज खूब पैदा हो सकता है। फसल खूब बढ़ सकती है। एक-एक व्यक्ति विज्ञान का उपयोग नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने कहा कि "विज्ञान भारत में आओ तुम्हारा स्वागत है।" उससे हमारे किसी धर्म-विचार और तत्त्वज्ञान में बाधा नहीं आती। हम वैज्ञानिक बनना और विज्ञान का उपयोग

भारत की खेती में करना चाहते हैं। किन्तु अगर सारे गाँववाले मिल-जुलकर काम करें, तो विज्ञान का उपयोग अच्छी तरह कर सकते हैं। फिर ये अनाज के भाव भी हमारे हाथ में आ सकते हैं। आज गाँववाले अपना अनाज बाजार की चीज समझकर उसे बाजार में ले जाते हैं और उसका मूल्य कम हो जाता है। वे अनाज को अपने घर की चीज क्यों नहीं बनाते? गाँववालों को अपने घर का अनाज बेचकर मौके पर बाहर से खरीदने की नौबत क्यों आये? ये सारी बातें समझ करने के लिए ही 'ग्रामदान' है। ग्रामदान में किसीको मजबूर बनाने की बात हरगिज नहीं। अगर ग्रामदान में किसीको मजबूर बनाने का विचार होता तो भारतीय संस्कृति को जाननेवाला मैं उसे हरगिज कबूल नहीं करता।

भारत को त्याग का विचार अतिप्रिय

भारतीयों से उनकी शक्ति के अनुरूप थोड़ा-बहुत त्याग करने की बात कही जाय तो उन्हें यह विचार बहुत पसन्द पड़ता है। बाबा के व्याख्यानों के लिए हजारों की भीड़ उमड़ पड़ती है इसका कारण और कुछ नहीं उसका त्याग और प्रेम का सन्देश सुनाना ही है। यह भारतीय संस्कृति का सन्देश है इसलिए उसे सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं और उमड़ पड़ते हैं। इस जमाने में त्याग कुछ कठिन है जब कि देश में अत्यन्त दारिद्र्य है। फिर भी लोग त्याग कर ही रहे हैं। गत आठ सालों में हमने यह मजा देखा। हिन्दुस्तान में ६ लाख दान-पत्रों के जरिये ४२ लाख एकड़ भूमि मिली है। जिसके सामने हाथ फैलाया उसने दिया ही। ऐसा कोई शख्स नहीं मिला जिसके सामने हाथ फैलाया और उसने न दिया हो। इस तरह प्रेम का यह सन्देश भारत का अपना सन्देश है। यदि यूरोपवाले इसे कबूल करें तो विज्ञान पर उन्हें भी भारत जितना ही पूरा हक रहेगा।

बड़े दुःख की बात है कि आज हिन्दुस्तान के पास ज्यादा विज्ञान नहीं है। उसे हमें पश्चिम के लोगों से सीखना है। उसे सीखने का

हमें पूरा अधिकार है। अहिंसा के तरीके से विज्ञान का उपयोग कर हम दिखा दें कि भारत की समस्याएँ प्रेम से हल की जा सकती हैं। भारत का गाँव-गाँव आबाद बन गया है और सभी प्रेम से कारोबार चला रहे हैं। हमने विज्ञान का पूरा उपयोग कर फसल बढ़ायी है। हम प्रेम से एक दूसरे के साथ रहते हैं। भारत में आपस का कोई भी झगड़ा है ही नहीं। आज यूरोप और अमेरिका के लोग चाहते हैं कि भारत इस दिशा में हमारा पथ-प्रदर्शन करे।

मीलवाड़ा (राजस्थान)
१२-२-'५९

विश्व का अद्भुततम जादू : विश्वास २२

इसके आगे हमारे लिए किसी प्रकार संकुचित बनना या बने रहना सुखकर नहीं होगा। आज विज्ञान की शक्ति मदद में आ गयी है और आत्मज्ञान की शक्ति तो अपने देश में पहले से ही थी। आत्मज्ञान हमें व्यापकता तो सिखाता ही था किन्तु अब विज्ञान उसकी भौतिक आवश्यकता भी बताता है।

विश्वास-शक्ति का महत्त्व

तीसरी भी एक शक्ति है और मुझे इन दोनों शक्तियों का दर्शन हो गया है। उस तीसरी शक्ति को मैं 'विश्वास-शक्ति' कहता हूँ। विज्ञान-युग में राजनैतिक सामाजिक योजनाओं और समाज-शास्त्र में इसकी बहुत जरूरत है। हममें जितनी विश्वास-शक्ति होगी उतने ही हम इस युग के अनुरूप बनेंगे। किन्तु इन दिनों बहुत ही अविश्वास दीखता है खासकर राजनैतिक धार्मिक और आर्थिक क्षेत्र में। यह पुराना चला आ रहा है फिर भी टिकनेवाला नहीं है। अगर हम टिकाना चाहें तो भी न टिकेगा। राजनीति में अविश्वास को एक अंग माना जाता है। उसे 'सावधानता' का लक्षण माना जाता है। लेकिन मैं मानता हूँ कि जिस क्षण मन में यत्किंचित् भी अविश्वास पैदा हो वह क्षण हमारे लिए असावधानता का है। पूर्ण विश्वास के बिना राजनीति सुधर नहीं सकती। राष्ट्रों में झगड़े बढ़ेंगे धार्मिक झगड़े बढ़ेंगे और विज्ञान-युग में उसका परिणाम बहुत खतरनाक होगा।

इसलिए वेदान्त और विज्ञान के साथ मैंने विश्वास को भी जोड़ दिया है। मैं आजकल इन्हीं तीनों तत्त्वों की उपासना करता हूँ। मैंने संस्कृत में एक श्लोक बनाया है वह इन दिनों मेरे जप का मन्त्र बन गया है। वह इस प्रकार है :

वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्रः।
येषां स्थैर्ये नित्यं शान्तिसमृद्धी भविष्यतो जगती॥

याने वेदान्त विज्ञान और विश्वास ये तीन शक्तियाँ हैं। इन तीनों के स्थैर्य से दुनिया में शान्ति और समृद्धि होगी। आज दुनिया को शान्ति और समृद्धि की जरूरत है। वह वेदान्त विज्ञान और विश्वास से ही हो सकेगी।

वेदान्त और विज्ञान का अर्थ

वेदान्त याने वेद का अन्त वेद का खात्मा। वेद याने सब प्रकार के काल्पनिक धर्म। दुनिया में जितने धर्म हैं उन सबका अन्त ही वेदान्त है। इसलिए उसमें इस्लामान्त जैनान्त, बौद्धान्त सिक्खान्त क्रिस्तान्त इन सबका अन्त आ जाता है। सत्य की खोज सत्य की पहचान और सत्य को मानना ही वेदान्त है। 'विज्ञान' याने सृष्टि-तत्त्व की खोज। अगर हमारा शारीरिक जीवन उसके अनुकूल बने तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य की उपलब्धि होगी। आगामी युग का चित्र मैं अपने मन में यही रखता हूँ कि उस युग में बीमारी ही न होगी। उपाय उपलब्ध होने पर भी उनके उपयोग का अवसर ही उपलब्ध न होगा। आँखों के लिए उत्तम-से-उत्तम चश्मा उपलब्ध रहेगा पर आँखों को उसकी किसी प्रकार की जरूरत ही नहीं रहेगी। हर गाँव में डॉक्टर हो ऐसा एक आदर्श इन दिनों माना जाता है। लेकिन आगे की दुनिया में डॉक्टर का नाम ही नहीं रहेगा सभी तन्दुरुस्त रहेंगे। बीमारियों के कारणों का निर्मूलन नहीं होता इसीलिए उपायों के उपयोग करने का मौका मिलता है। जब तक यह नहीं होता तब तक सृष्टि-विज्ञान-तत्त्व का चिन्तन कर उसके अनुसार हम अपना जीवन नहीं बना सकेंगे। इसलिए विज्ञान और परस्पर विश्वास होना चाहिए।

सर्वोदय नगर (अजमेर)

विश्वास पर ही व्यक्ति, समाज टिकेंगे • २३ •

पंजाब भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। हमारी अपनी एक सभ्यता है। उसके पीछे हजारों वर्षों का इतिहास है। वेद उपनिषद् गीता गुरुवाणी आदि के जरिये यहाँ एक सद्विचार की अक्षुण्ण परंपरा चल रही है। उसने यहाँ की हवा में एकता की भावना उत्पन्न की है। पाकिस्तान की घटना ने लोगों के दिल तोड़ दिये फिर भी जिन विचारों की बुनियाद यहाँ पड़ी है वह कहाँ जा सकती है! हम उन्हीं विचारों का सम्बल पाकर आज भी गाते हैं : 'ना कोइ बैरी, नाहीं बिगाना सकल संगी हमको बनि आई।' यहाँ लोग चाहे झगड़ते रहें लेकिन सबके दिलों में एकता की व्याप्ति है। गुरु नानक ने यही बात कही है : 'आइ पन्थी सकल जमाती।' आओ इस पन्थ में आ जाओ। हम सब एक ही समाज के हैं।

इन्सानियत पर यकीन करनेवाला बापू

टूटे हुए दिलों को जोड़ने की प्रक्रिया हिन्दुस्तान में बराबर जारी है। हमने भूदान ग्रामदान भी इसीलिए चलाया है कि लोगों के टूटे दिल जुड़ जायँ। दिल टूटने के कई कारण होते हैं। धार्मिक झगड़ों से दिल टूटते हैं भाषाई झगड़ों से दिल टूटते हैं और जमातों के झगड़ों से भी दिल टूटते हैं। आर्थिक संकट आने से भी जुड़े दिलों का सदा के लिए विच्छेद हो जाता है। इसलिए इन चार कारणों को मिटाने के लिए हम चाहते हैं कि आज के गाँव ग्राम-स्वराज्य में परिवर्तित हो जायँ। मैं ग्राम-स्वराज्य का सन्देश लेकर ही आपके बीच आता हूँ। ग्राम-स्वराज्य दिल जोड़ने की एक तरकीब है।

दिल की बात दिल जानता है। मेरे मन में क्या है इस बात का स्पर्श आपके दिलों को होता है। इसीलिए यहाँ के लोग आज हैं और मुझसे कहते हैं कि मैं उनके मिटाने का काम करूँ। क्या मेरे पास कोई

जादू है, जो मैं उसके पीछे हूँ। हाँ एक जादू है और वह यही कि मेरा इन्सानियत पर यकीन है। मैंने जाहिर किया है कि इन्सान के लिए जो ताकतें मददगार हो सकती हैं उनमें सबसे बड़ी ताकत है विश्वास। यदि आप चाहते हैं कि सर्वत्र शान्ति हो, सुख हो, समृद्धि हो, कहीं कोई कष्ट न पावे, कभी किसीको परेशान न होना पड़े तो वेदान्त, विज्ञान और विश्वास, इन तीनों को अपनाने की जरूरत है।

दूसरों पर विश्वास महान धर्म

आज भाई-भाई में अविश्वास है, मित्र-मित्र में अविश्वास है। विभिन्न पक्षों, दलों और गुटों में अविश्वास है। किन्तु हम कहना चाहते हैं कि अविश्वास अब इस जमाने की चीज नहीं है। आज मानव के हाथों में इतने भयानक शस्त्रास्त्र आ गये हैं कि यदि एक-दूसरे पर अविश्वास करते रहेंगे तो मानव-समुदाय मिट जायगा। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जिस तरह अविश्वास चलता है! अविश्वास से बात बनती नहीं बिगड़ जाती है। अगर हमारा कारोबार केवल लाठी पर होता तो अविश्वास के परिणामस्वरूप कुछ सिर-फुटौवल होकर ही रह जाता। लेकिन आज हमारे हाथों में हाइड्रोजन बम है। इसलिए अब अविश्वास के कारण सर्वनाश हुए बिना नहीं रहेगा।

इसलिए जैसे हम मित्रों पर विश्वास करते हैं वैसे ही प्रतिपक्षी पर भी विश्वास करना सीखें। विश्वास रखने से हम कुछ खोयेंगे नहीं। खोयेगा वही जो विश्वासघात करेगा। बाबा के पास यही जादू है कि वह सब पर विश्वास रखता है। आज की सभा आरंभ करते समय कुछ शोरगुल हो रहा था। तब मैंने कहा कि अभी मैं धीरे-धीरे बोलूँगा। लेकिन शोर का थमना शुरू किया और बन्द! अगर धीरे बोलने से काम न चलता तो मैं मौन रहता। जैसे हिंसा में शस्त्र तीव्र से तीव्रतम हो जाते हैं, वैसे ही अहिंसा में सौम्य से सौम्यतम होते हैं। सर्वोदय की पद्धति में दूसरों पर विश्वास रखना ही बहुत बड़ा शस्त्र है।

विश्वास पर विश्वास करें

विश्वास इस संसार का सबसे अद्भुत जादू है। विश्वास पर ही यह सारा संसार खड़ा है। यदि विश्वास की शक्ति न रहे तो मानव जाति एक-दूसरे से लड़-झगड़कर समाप्त हो जायगी। एक चोर को भी अपने साथी चोर पर विश्वास करना पड़ता है। यदि हम इस विश्वास पर विश्वास करके उसकी शक्ति को पहचान सकें और तदनुसार बरत सकें तो दुनिया के झगड़े मिटने में देर न लगेगी। आज की दुनिया के झगड़ों का सबसे बड़ा कारण अविश्वास है। हमें यही अविश्वास मिटाना है।

मेरे पास मास्टर तारासिंह ज्ञानी करतारसिंह पटियाला के महाराज आर्यसमाजी भाई आदि भिन्न भिन्न विचारों के लोग आते हैं। वे जो कुछ कहते हैं मैं उन पर विश्वास रखता हूँ। क्या वे सारे मुझे ठगनेवाले हैं? नहीं वे मुझे ठग नहीं सकते। जो सामनेवाले पर विश्वास रखता है वह उसके हृदय में प्रवेश पाता है। फिर तो सामनेवाले के लिए भी यह लाजिमी हो जाता है कि वह ठीक-ठीक बातें बता दे। मैं किसी पर विश्वास रखता हूँ, तो उसके लिए भी मुझ पर विश्वास करना लाजिमी हो जाता है।

विश्वास से असज्जन भी सज्जन बनते हैं

यहाँ मैंने चन्द व्यक्तियों का एक सर्वोदय-मंडल बना लिया है। ये व्यक्ति दुनिया में सबसे भले हैं ऐसी बात नहीं। उनमें दोष हो सकते हैं। लेकिन मैंने विश्वास से यह मण्डल बनाया है। आप भी उन लोगों पर विश्वास रखिये। अगर मैं सर्वोदय-मंडल में परखकर आदमियों को सम्मिलित करता तो आप भी उन्हें परखते। लेकिन मैंने उन पर विश्वास रखा है। आप भी उन पर विश्वास रखिये। आपके विश्वास के बावजूद अगर वे निकम्मे साबित हुए तो सारा डूबेगा आप डूबेंगे और वे भी डूबेंगे। डूबना है, तो साथ डूबेंगे और तैरना है, तो साथ

ही देंगे। इसीमें आनन्द है। आप विश्वास रखेंगे, तो वे निश्चय ही डूबने जैसा काम नहीं करेंगे। विश्वास से अहज्जन सज्जन बन जाते हैं।

हम एक पत्थर लेते हैं और मंत्र बोलकर उसे भगवान् बना देते हैं। भगवान् ने हमें बनाया पर हम भावना से अभिषिक्त कर पत्थर को ही भगवान् बना देते हैं। इसी तरह हमने इस पत्थर इकट्ठे किये हैं। बच्चा माँ पर विश्वास रखता है इसलिए माँ बच्चे का खून नहीं कर सकती। मैंने इन लोगों पर विश्वास रखा है इसलिए ये भी गलत काम नहीं कर सकते। अगर कभी इनसे कोई गलत काम हो जाय तो ये ही फिर से जाहिर करेंगे कि 'हमने अमुक गलती की है, आप हमें क्षमा कीजिये। जब तक यह जाहिर नहीं करते तब तक यह मानना चाहिए कि ये ठीक काम करते हैं।

विश्वास इस जमाने की शक्ति है। लोग मेरे शब्दों पर विश्वास रखते हैं। नहीं तो उनके पास क्या सबूत है कि मैं झूठ नहीं बोलता। किन्तु लोगों का मुझ पर विश्वास है कि मैं झूठ नहीं बोलता और मैं भी उन पर विश्वास रखता हूँ। विश्वास ही मेरा शस्त्र है। इसकी शक्ति महान है।

बलाचौरा (पंजाब)

७-९-'५९

वैज्ञानिक भौतिकवाद और धार्मिक श्रद्धा २४.

यहाँ मुझसे पूछा गया कि 'आज वैज्ञानिक भौतिकवाद तथा व्यापार के अन्धाधुन्ध प्रचार के कारण मानव की धार्मिक श्रद्धा मिटती जा रही है। जीवन की मान्यताएँ अस्थिर हो रही हैं। उन्हें पुनः स्थापित करने का क्या उपाय है?' किन्तु प्रस्तुत प्रश्न में वैज्ञानिक भौतिकवाद के बारे में जो अभिप्राय प्रकट किया गया है वह पूरी तरह से सही नहीं है। 'वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म के प्रति श्रद्धालु नहीं है' ऐसा फैसला देना ठीक नहीं। हमने वैज्ञानिक भौतिकवाद का अर्थ ही ठीक तरह से नहीं समझा। भौतिकवाद एक भिन्न है और वैज्ञानिक भौतिकवाद उससे कुछ अलग चीज है। भौतिक जीवन का स्वरूप यह है कि मनुष्य खाना-पीना भौतिक उन्नति करना आदि के बारे में ही सोचता रहे—केवल अपनी ही चिन्ता करता रहे। वह समाज को खाना-पीना मिले, समाज की भौतिक समृद्धि हो यह नहीं सोचता। लेकिन वैज्ञानिक भौतिकवाद कहता है कि हमारा मन और दुनिया ये या दो मात्र एक-दूसरे से सम्बन्ध रखनेवाले हैं इनमें से कौन प्रधान और कौन गौण है यह समझ लिया जाय।

दृष्टि और मन का आधार

विज्ञान कहेगा कि मन गौण है और विश्व प्रधान है। मन दुनिया का प्रतिबिंब है उस पर दुनिया का असर होता है। मन से दुनिया नहीं दुनिया से मन बना है। मन मूलतः भौतिक है। यानी भोजन को भूख तृप्ति पाती है उसका परिणाम है।

एक विचार यह भी कहता है कि अपनी दृष्टि मेरे मन की कल्पना है। मैं मरता हूँ तो सृष्टि समाप्त हो जाती है। मैं आँख बन्द करके अन्धा हो जाता हूँ तो यह दिखनेवाली सृष्टि भी [illegible] है।

जाती है। मैं बहरा हो जाऊँ, तो मेरे लिए यह सारी नाद-सृष्टि खतम हो जायगी। इसलिए दुनिया मानसिक सृष्टि की प्रतिमा है यह मानसशास्त्र का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष कहता है कि हमारा मन सृष्टि का बना है। हम सृष्टि में परिवर्तन ला सकते हैं तो मन में भी परिवर्तन ला सकते हैं। मानसिक परिवर्तन स्वयं स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। उस पर दुनिया का असर होता है।

दुनिया का स्वरूप क्या है इसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ है। यह जो माना गया है कि वैज्ञानिक भौतिकवाद जड़वाद है यह सही नहीं है। विज्ञान का भी अभी तक निर्णय नहीं हुआ है कि सारी सृष्टि जड़मय है या चेतनमय। लेनिन ने कहा था कि जड़वाद और ब्रह्मवाद में से कौनसा सही है इसका फैसला हम विज्ञान पर छोड़ना चाहते हैं। लेकिन विज्ञान अभी तक उसका फैसला नहीं कर पाया है। अगर यह भी सिद्ध हो कि सृष्टि जड़मय है या चेतनमय तब भी उसके असर में हमारा मन है यह वैज्ञानिकवाद का कहना है। जब लेनिन लिख रहा था तब विज्ञान जड़वाद की ओर झुका था। लेकिन अब वह ब्रह्मवाद की ओर अधिक झुका है। जैसे बच्चे या जवानों के पास थोड़ा-सा ज्ञान होता है तो उसे वे पक्का-सा मान लेते हैं, अपनी धारणाएँ बना लेते हैं और कहने लगते हैं कि आपके साथ हमारा मौलिक और प्रामाणिक मतभेद है। ऐसी ही हालत सौ साल पहले विज्ञान की भी थी। विज्ञान अनादि काल से चला आ रहा है लेकिन सौ साल पहले जब उसकी प्रगति होने लगी तब थोड़े ज्ञान से सृष्टि जड़ है ऐसा मानने की तरफ विज्ञान का पूरा झुकाव था। लेकिन जब ज्ञान का विस्तार होने लगा तो शंका होने लगी कि शायद सृष्टि चेतन भी हो। इस तरह 'शायदवाली' बात आ गयी। धीरे-धीरे वैज्ञानिक कहने लगे कि 'शायद यह जड़वाद ही ब्रह्मवाद निकले। अभी भी शायदवाली बात है ही। पक्का निर्णय नहीं हुआ है। पहले तो पक्का जड़वाद था किन्तु बाद में कुछ संशयवाद आ गया। आज

भी संशयवाद ही है लेकिन उसका झुकाव श्रद्धावाद की तरफ है। विज्ञान की यह खूबी है कि वह नम्र होता है। जहाँ नम्रता न हो, वहाँ मनुष्य का मन खुला नहीं हो सकता और जहाँ मनुष्य का मन खुला न हो वहाँ अवैज्ञानिक दृष्टिकोण आ जाता है। यह बात हमें ठीक तरह से समझ लेनी चाहिए।

सृष्टि का स्वरूप और विज्ञान

सृष्टि का स्वरूप क्या है, यह सवाल विज्ञान पर छोड़ा गया है। मगर सृष्टि का स्वरूप मनोमय निकले तो एक क्षण में वैज्ञानिक भौतिकवाद का शांकर अद्वैत के रूप में परिवर्तन हो जायगा। अद्वैत मानता है कि मन सृष्टि का प्रतिबिंब है। हमारे यहाँ द्वैतवादी या अद्वैतवादी किसीने भी यह नहीं माना कि मन ने दुनिया बनायी है। दुनिया तो पहले से ही थी मन बाद में आया। इसलिए मन ने दुनिया बनायी ऐसा अगर हम आस्तिक लोग मानते तो ईश्वर को सृष्टि बनाने की तकलीफ क्यों देते। है ही हमारा मन जो सृष्टि बनायेगा। लेकिन हम मानते हैं कि ईश्वर सृष्टि को बनाता है। फिर एक यही सवाल रहता है कि ईश्वर को मानें या न मानें।

इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि अगर सृष्टि में मनस्तत्त्व भरा है तो वह मनस्तत्त्व मेरे मन में भी भरा हुआ है। यह सिद्ध होने पर परिणामस्वरूप जो सिद्धान्त सामने आयेगा वह अद्वैतवाद ही बनेगा। वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद के बहुत ही नजदीक आ पहुँचा है। केरल के एक कम्युनिस्ट मंत्री ने अपने भाषण में कहा था कि 'मैं यद्यपि ईश्वर को नहीं मानता लेकिन जिस प्रकार का ईश्वर शंकराचार्य मानते थे वैसा ईश्वर मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।'

शंकराचार्य ने जो अद्वैत का विचार हमारे सामने पेश किया वह एक वैज्ञानिक विचार है। सृष्टि और मन के बीच किसीका किसी पर भी असर हो, लेकिन जैसी सृष्टि है वैसा ही मन है। दोनों का रूप

समान है यह मानी हुई बात है। पहचानने की दो प्रक्रियाएँ हैं। पिंड का परीक्षण करना और सृष्टि का परीक्षण करना। वैज्ञानिक लोग सृष्टि का परीक्षण करते हैं। अब वे सृष्टि का भ्रमस्वरूप तय करेंगे तो उन्हें मन को भी भ्रमरूप समझना ही पड़ेगा। दूसरी प्रक्रिया यह है कि मन सृष्टि का प्रतिबिंब है। इसलिए पहले प्रतिबिंब देखा जाय और उसका विश्लेषण कर सृष्टि का परीक्षण किया जाय। अन्तर्मन में अनुभव करने के बाद शंकराचार्य जैसे अद्वैतवादियों ने यह निर्णय किया कि सृष्टि भ्रमरूप है। इसके विपरीत विज्ञान अणु से ब्रह्मांड की तरफ जाने के बजाय ब्रह्मांड से अणु की तरफ आता है। इसीलिए ब्रह्मवाद की तरफ जाने में विज्ञान को देर हो रही है।

आज वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद और अध्यात्मवाद के बहुत ही निकट आ पहुँचा है। वर्तुल के दो सिरों के बीच का फासला एक बाजू से देखें तो ज्यादा-से-ज्यादा होगा और दूसरी तरफ से देखें तो कम-से-कम है। इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद का जिस प्रकार विकास हो रहा है उससे पता चलता है कि वह ब्रह्मवाद के बहुत ही निकट आ रहा है। मैं उन दोनों को इतना नजदीक पाता हूँ, जैसा कि शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा का चन्द्रमा।

वैज्ञानिक भौतिकवाद और श्रद्धा

श्रद्धा का अर्थ क्या है? वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म की श्रद्धा को तोड़ता है या जोड़ता है? कुछ लोग कहते हैं कि पुराना आदमी श्रद्धावान है और नया आदमी बुद्धिवान। यानी एक श्रद्धावादी हुआ और दूसरा बुद्धिवादी। इस तरह का भेद करना [illegible] बहुत होता है। वास्तव में श्रद्धा और बुद्धि परस्परतः एक जगह रह सकती हैं। ठीक भी श्रद्धा में कोई विरोध नहीं है। एक बुद्धिहीन मनुष्य भी श्रद्धावान हो सकता है और अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति भी श्रद्धावान [illegible] श्रद्धा [illegible] कल्पना बिलकुल [illegible] है, क्योंकि दोनों के [illegible] अलग-अलग हैं। जैसे कान और

आँख के विषय। सुन्दर संगीत सुनाई दे रहा हो, तो कान उसके बारे में अपना निर्णय तुरन्त दे देगा, लेकिन आँख चुप रहेगी। क्योंकि संगीत के बारे में अनुकूल या प्रतिकूल राय प्रकट करना आँख का विषय नहीं। लेकिन कान और आँख में विरोध है ऐसा नहीं माना जायगा। इसी तरह श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भी अलग-अलग हैं।

बुद्धि और श्रद्धा

श्रद्धा से कर्मशक्ति पैदा होती है और बुद्धि से ज्ञानप्राप्ति। जैसे मोटर में दो यन्त्र होते हैं : एक दिशासूचक और दूसरा गतिवर्धक। उन दोनों में कोई विरोध नहीं है, बल्कि दोनों मिलकर ही मोटर को चलाते हैं। दिशासूचक यन्त्र के अभाव में मोटर कहीं भी टकरा सकती है और गतिवर्धक यन्त्र के अभाव में मोटर चलेगी ही नहीं। इसी तरह श्रद्धा के बिना कर्मशक्ति नहीं आ सकती पर बुद्धि के बिना यह मालूम ही नहीं होता कि किस चीज पर अमल करना है। बुद्धि दिशा बताती है और श्रद्धा से उस पर अमल होता है। अमल करने की अधिकारिणी श्रद्धा है और जहाँ विचार बनते हैं उसकी प्रमुख है बुद्धि। दोनों की मदद से जीवन की पूर्ति हो जाती है।

कितनों के मन में यह गलत ख्याल बैठ गया है कि जिस बात में बुद्धि चलती हो वहाँ बुद्धि न चलाना इसीका नाम श्रद्धा है। जहाँ सामने धुआँ दीखता हो वहाँ श्रद्धा क्या करेगी? वह तो बुद्धि की बात है। बिना अग्नि के धुआँ नहीं हो सकता। इसलिए वहाँ अग्नि जरूर है यह फैसला बुद्धि देती है। वहाँ श्रद्धा का क्या सवाल है? बुद्धि इतनी स्वाभाविक बात है कि रास्ते पर मोटर आयी, तो जिस मादर देखने की आदत है जिसमें बचपन कम है, ऐसा गधा भी रास्ता छोड़कर पाँच कदम दूर खड़ा हो जाता है। जिन गधों ने कभी मोटर देखी ही नहीं वे मोटर देखकर भाग जाते हैं। लेकिन जिस गधे को मोटर का पूर्वदर्शन है, वह जानता है कि मोटर बने-बनाए रास्ते पर ही चलती है। उसने यह फैसला श्रद्धा से नहीं बुद्धि से किया। इसमें

समान है यह मानी हुई बात है। पहचानने की दो प्रक्रियाएँ हैं। पिंड का परीक्षण करना और सृष्टि का परीक्षण करना। वैज्ञानिक लोग सृष्टि का परीक्षण करते हैं। अब वे सृष्टि का ब्रह्मस्वरूप तय करेंगे तो उन्हें मन को भी ब्रह्मरूप समझना हो पड़ेगा। दूसरी प्रक्रिया यह है कि मन सृष्टि का प्रतिबिंब है। इसलिए पहले प्रतिबिंब देखा जाय और उसका विश्लेषण कर सृष्टि का परीक्षण किया जाय। अध्यात्म में अनुभव करने के बाद शंकराचार्य जैसे अद्वैतवादियों ने यह निर्णय दिया कि सृष्टि ब्रह्मरूप है। इसके विपरीत विज्ञान अणु से ब्रह्मांड की तरफ जाने के बजाय ब्रह्मांड से अणु की तरफ आता है। इसीलिए ब्रह्मवाद की तरफ आने में विज्ञान को देर हो रही है।

आज वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद और अध्यात्मवाद के बहुत ही निकट आ पहुँचा है। वर्तुल के दो सिरों के बीच का फासला एक बाजू से देखें तो ज्यादा-से-ज्यादा होगा और दूसरी तरफ से देखें, तो कम-से-कम है। इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद का जिस प्रकार विकास हो रहा है उससे पता चलता है कि वह ब्रह्मवाद के बहुत ही निकट आ रहा है। मैं इन दोनों को इतना नजदीक पाता हूँ, जैसा कि शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा का चन्द्रमा।

वैज्ञानिक भौतिकवाद और श्रद्धा

श्रद्धा का अर्थ क्या है? वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म की श्रद्धा को तोड़ता है या जोड़ता है? कुछ लोग कहते हैं कि फलाना आदमी श्रद्धावान है और फलाना आदमी बुद्धिहीन। मानो एक श्रद्धावादी हुआ और दूसरा बुद्धिवादी। इस तरह की भेद रेखा खींचना बहुत [illegible] है। वास्तव में श्रद्धा और बुद्धि परिपूरक एक साथ रह सकती हैं। बुद्धि में भी श्रद्धा से कोई विरोध नहीं है। एक बुद्धिहीन मनुष्य भी श्रद्धाहीन हो सकता है और [illegible] बुद्धिमान व्यक्ति भी श्रद्धावान [illegible] बुद्धि और श्रद्धा दोनों के [illegible] कल्पना बिलकुल [illegible] है, क्योंकि दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। अब ज्ञान और

आँख के विषय। सुन्दर संगीत सुनाई दे रहा हो, तो कान उसके बारे में अपना निर्णय तुरन्त दे देगा, लेकिन आँख चुप रहेगी। क्योंकि संगीत के बारे में अनुकूल या प्रतिकूल राय प्रकट करना आँख का विषय नहीं। लेकिन कान और आँख में विरोध है ऐसा नहीं माना जायगा। इसी तरह श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भी अलग-अलग हैं।

बुद्धि और श्रद्धा

श्रद्धा से कर्मशक्ति पैदा होती है और बुद्धि से ज्ञानशक्ति। जैसे मोटर में दो यन्त्र होते हैं: एक दिशादर्शक और दूसरा गतिवर्धक। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है बल्कि दोनों मिलकर ही मोटर को चलाते हैं। दिशादर्शक यन्त्र के अभाव में मोटर कहीं भी टकरा सकती है और गतिवर्धक यन्त्र के अभाव में मोटर चलेगी ही नहीं। इसी तरह श्रद्धा के बिना कर्मशक्ति नहीं आ सकती पर बुद्धि के बिना यह मालूम ही नहीं होता कि किस चीज पर अमल करना है। बुद्धि दिशा बताती है और श्रद्धा से उस पर अमल होता है। अमल करने की अधिकारिणी श्रद्धा है और जहाँ विचार चलते हैं उसकी प्रमुख है बुद्धि। दोनों की मदद से जीवन की पूर्ति हो जाती है।

कितनों के मन में यह गलत खयाल बैठ गया है कि जिस बात में बुद्धि चलती हो, वहाँ बुद्धि न चलाना इसीका नाम श्रद्धा है। जहाँ सामने धुआँ दीखता हो वहाँ श्रद्धा क्या करेगी? यह तो बुद्धि की बात है। बिना अग्नि के धुआँ नहीं हो सकता। इसलिए वहाँ अग्नि जरूर है यह फैसला बुद्धि देती है। वहाँ श्रद्धा का क्या सवाल है? बुद्धि इतनी स्वाभाविक बात है कि रास्ते पर मोटर आयी, तो जिसे मोटर देखने की आदत है जिसमें गवापन कम है ऐसा गधा भी रास्ता छोड़कर पाँच कदम दूर खड़ा हो जाता है। जिन गधों ने कभी मोटर देखी ही नहीं वे मोटर देखकर भाग जाते हैं। लेकिन जिस गधे को मोटर का पूर्वदर्शन है वह जानता है कि मोटर बने-बनाये रास्ते पर ही चलती है। उसने यह फैसला श्रद्धा से नहीं बुद्धि से किया। इसन

समान है यह मानी हुई बात है। पहचानने की दो प्रक्रियाएँ हैं। मन का परीक्षण करना और सृष्टि का परीक्षण करना। वैज्ञानिक लोग सृष्टि का परीक्षण करते हैं। जब वे सृष्टि का ब्रह्मस्वरूप तय करेंगे तो उन्हें मन को भी ब्रह्मरूप समझना ही पड़ेगा। दूसरी प्रक्रिया यह है कि मन सृष्टि का प्रतिबिंब है। इसलिए पहले प्रतिबिंब देखा जाय और उसका विश्लेषण कर सृष्टि का परीक्षण किया जाय। आत्मदर्शन में अनुभव करने के बाद शंकराचार्य जैसे अद्वैतवादियों ने यह निर्णय दिया कि सृष्टि ब्रह्मरूप है। इसके विपरीत विज्ञान अणु से ब्रह्मांड की तरफ जाने के बजाय ब्रह्मांड से अणु की तरफ आता है। इसीलिए ब्रह्मवाद की तरफ जाने में विज्ञान की देर हो रही है।

आज वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद और अध्यात्मवाद के बहुत ही निकट आ पहुँचा है। वर्तुल के दो सिरों के बीच का फासला एक बाजू से देखें तो ज्यादा-से-ज्यादा होगा और दूसरी तरफ से देखें तो कम-से-कम है। इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद का जिस प्रकार विकास हो रहा है उससे पता चलता है कि यह ब्रह्मवाद के बहुत ही निकट आ रहा है। मैं इन दोनों को इतना नजदीक पाता हूँ, जैसा कि शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा का चन्द्रमा।

वैज्ञानिक भौतिकवाद और श्रद्धा

श्रद्धा का अर्थ क्या है? वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म की श्रद्धा को तोड़ता है या जोड़ता है? कुछ लोग कहते हैं कि फलाना आदमी श्रद्धाशील है और फलाना आदमी बुद्धिशील। माने एक श्रद्धावादी हुआ और दूसरा बुद्धिवादी। इस तरह की भेद-रेखा खींचना बहुत गलत है। वास्तव में श्रद्धा और बुद्धि परिपूर्णता एक साथ रह सकती हैं। बुद्धि और श्रद्धा में कोई विरोध नहीं है। एक बुद्धिहीन मनुष्य भी श्रद्धावान हो सकता है और अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति भी श्रद्धाहीन। बुद्धि और श्रद्धा दोनों के विरोध की कल्पना बिलकुल गलत है। क्योंकि दोनों के विषय अलग-अलग हैं जैसे कान और

आँख के विषय। सुन्दर संगीत सुनाई दे रहा हो तो कान उसके बारे में अपना निर्णय तुरन्त दे देगा लेकिन आँख चुप रहेगी। क्योंकि संगीत के बारे में अनुकूल या प्रतिकूल राय प्रकट करना आँख का विषय नहीं। लेकिन कान और आँख में विरोध है ऐसा नहीं माना जायगा। इसी तरह श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भी अलग-अलग हैं।

बुद्धि और श्रद्धा

श्रद्धा से कर्मशक्ति पैदा होती है और बुद्धि से ज्ञानशक्ति। जैसे मोटर में दो यन्त्र होते हैं : एक दिशासूचक और दूसरा गतिवर्धक। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, बल्कि दोनों मिलकर ही मोटर को चलाते हैं। दिशादर्शक यन्त्र के अभाव में मोटर कहीं भी टकरा सकती है और गतिवर्धक यन्त्र के अभाव में मोटर चलेगी ही नहीं। इसी तरह श्रद्धा के बिना कर्मशक्ति नहीं आ सकती पर बुद्धि के बिना यह मालूम ही नहीं होता कि किस चीज पर अमल करना है। बुद्धि दिशा बताती है और श्रद्धा से उस पर अमल होता है। अमल करने की अधिकारिणी श्रद्धा है और जहाँ विचार चलते हैं उसकी प्रमुख है बुद्धि। दोनों की मदद से जीवन की पूर्ति हो जाती है।

कितनों के मन में यह गलत खयाल बैठ गया है कि जिस बात में बुद्धि चलती हो वहाँ बुद्धि न चलाना इसीका नाम श्रद्धा है। जहाँ सामने धुआँ दीखता हो वहाँ श्रद्धा क्या करेगी? यह तो बुद्धि की बात है। बिना अग्नि के धुआँ नहीं हो सकता। इसलिए वहाँ अग्नि जरूर है यह फैसला बुद्धि देती है। वहाँ श्रद्धा का क्या सवाल है? बुद्धि इतनी स्वाभाविक बात है कि रास्ते पर मोटर आयी तो जिसे मोटर देखने की आदत है, जिसमें गधापन कम है ऐसा गधा भी रास्ता छोड़कर पाँच कदम दूर खड़ा हो जाता है। जिन गधों ने कभी मोटर देखी ही नहीं वे मोटर देखकर भाग जाते हैं। लेकिन जिस गधे को मोटर का पूर्वदर्शन है वह जानता है कि मोटर बने-बनाये रास्ते पर ही चलती है। उसने यह फैसला श्रद्धा से नहीं बुद्धि से किया। हमने

अभी जो धर्म चलते हैं उनमें अठमिश्रण हुआ है, यही वेदना ब्रह्मवाद है। जो तान्त्रिक धर्म होते हैं वे ब्रह्मवाद में नहीं टिक सकते। धार्मिक धर्म मानसिक अवस्थाओं के लिए आवश्यक हो सकते हैं, लेकिन ब्रह्मवाद के लिए बिलकुल अनावश्यक हैं। निर्गुणवाद में सगुणवाद नहीं टिकता। ऊँचे ज्ञान का नीचे के ज्ञान पर प्रहार होता ही है।

ज्ञान देने का सही रास्ता

ब्रह्मविद्या के लिए अधिकार चाहिए, ज्ञान-प्राप्ति में भी अधिकारवाद की बात आती है। फिर उसमें क्रम की जरूरत होती है। कौन-सा ज्ञान कब प्राप्त हो इसका एक क्रम होता है। कोई बच्चा मेरे पास आये और मैं आरम्भ में ही उसे सिखाऊँ कि 'तुम शरीर की परवाह मत करो, हम शरीर नहीं हैं शरीर से भिन्न हैं' तो मैं गलती करूँगा। उस बच्चे को तो मुझे इस प्रकार समझाना होगा कि 'तुम्हें शरीर मजबूत बनाना चाहिए।' जब वह यह बात समझ जाय तब फिर मुझे उसे यह बता देना चाहिए कि 'शरीर ही सब कुछ नहीं है।' मौके पर इसे भी फेंक देना पड़ता है। इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद या ब्रह्मवाद का किसी जरूरी चीज पर हमला होता है तो फिर कुछ देर तक उस ज्ञान को दूर रखना होगा। ज्ञान-प्राप्ति में जल्दी करने की हवस नहीं होनी चाहिए। यह क्रमिक विकास का कार्यक्रम है। जैसे स्कूल का क्रम प्राप्त करने पर कॉलेज में दाखिल हो सकते हैं वैसे ही आत्मज्ञान के विषय में भी समझना चाहिए। सृष्टि के मूल में जो तर्कशास्त्र है उससे आरम्भ नहीं करना चाहिए। वह तो आखिर में आयेगा। समाज में पहले आचार-धर्म स्थिर हो जाय फिर वेदान्त या वैज्ञानिक भौतिकवाद आये तो ठीक है।

धर्म-रक्षण के तीन उपाय

अब सवाल आता है कि धर्म का रक्षण कैसे हो? इसके लिए तीन बातें करनी होंगी : १ धर्म में जो गैर-जरूरी तत्त्व दाखिल हो गये

हैं उन्हें हटाया जाय और स्पष्ट कहा जाय कि वे जरूरी नहीं हैं। २ भिन्न-भिन्न धर्मवाले सूक्ष्म बातों में जो एक-दूसरे का विरोध करते हैं और विरोध को संघर्ष का रूप देते हैं उसके बदले में सर्वमान्य नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाय और उसके अनुसार जीवन बिताने की कोशिश की जाय। सूक्ष्म चीजें बाद में की जायें। ३ धर्म-विचार क्रम के अनुसार लोगों के सामने रखा जाय। ऐसा करने से ही लोगों में धर्म तथा श्रद्धा स्थिर होगी और विज्ञान भी प्रगति कर सकेगा।

पठानकोट

२१-९-'५९

ब्रह्मविद्या के विकास से ही हम टिक सकेंगे २५

इस वक्त मैं अन्दर से बहुत बेचैन हूँ। पर छोड़ते समय जितना बेचैन था उतना तो इस वक्त भी हूँ। उस वक्त मुझे ब्रह्मविद्या की धुन थी। उसकी प्राप्ति के लिए घर छोड़ना चाहिए, स्कूल छोड़ना चाहिए—ऐसी धुन थी और १९१६ में सब कुछ छोड़कर मैं निकल ही पड़ा। पर अब वह चिन्ता मेरे मन में नहीं रही। उसका समाधान जितना हो सकता था हो चुका है। अब मुझे बेचैनी यह है कि हमारा कुल सर्वोदय-विचार ब्रह्मविद्या के अभाव में डूब जायगा। हमें हर तरह से सरकारी मदद मिलेगी पर वह जितनी ज्यादा मिलेगी सर्वोदय-विचार उतना ही ज्यादा डूबता जायगा। इसका मतलब यह नहीं कि नयी तालीम और दूसरे कामों में सरकार की मदद न मिलनी चाहिए। मदद तो जरूर मिले बल्कि कुल सरकार ही सर्वोदय की बन जाय। परन्तु सरकार की मदद हजम करने के लिए कुछ अपनी भी तो चीज मजबूत हो। नहीं तो हमें वह मदद जितने परिमाण में मिलती जायगी उतने ही परिमाण में हम ढीले पड़ते जायँगे। रचनात्मक कार्य आदि की जितनी बातें मैं इन दिनों सुनता हूँ, उनकी कोई बुनियाद मुझे नहीं दीखती।

अपनी और दूसरों में ऐक्य हो

ईसामसीह ने कहा था कि 'लव दाय नेबर एज दाय सेल्फ'—अपने पड़ोसी पर अपने जैसा ही प्रेम करें। बोलने में तो सहज ही यह बात बोल देते हैं लेकिन इस पर जब सोचते हैं तो मालूम होता है कि यह हममें तब तक नहीं आ सकती, जब तक कि हम अपने मूल स्वरूप तक गोता नहीं लगाते। यों भी कई कारणों से पड़ोसी पर प्रेम करना हमेशा लाभदायी होता है इसलिए वह तो हम करेंगे ही। फिर भी

ईसामसीह ने जो यह कहा, यह बहुत गहरी बात है। उस दृष्टि से हम अपने को तौलें तो मालूम होगा कि हम ऊपर-ऊपर से समानता की कुछ बातें कर लेते हैं परन्तु वह बिलकुल नकली साम्य है। जब तक अन्दर से यह अनुभूति नहीं होती कि 'हम सब एक ही हैं—भिन्न-भिन्न आकार दीख पड़ने पर भी एक ही वस्तु हैं', तब तक इस ऊपरी एकता से कुछ नहीं बनेगा। हम प्रार्थना करते हैं उससे भी कुछ काम है। उसमें हम कुछ सुधार भी करते रहते हैं। फिर भी उसमें भक्ति से हृदय द्रवित होने की बात नहीं दीखती। हम बीमारों की सेवा करते हैं—दुनिया में दूसरी जो सेवाएँ चलती हैं उनके मुकाबले में बहुत अच्छी सेवा करते हैं। किन्तु उसमें भी हमारा एक क्षेत्र बना है। हम क्षेत्र के अनुसार काम करते हैं। हमारी संस्थाएँ इतनी शुष्क बनती हैं कि उनमें कुछ आत्मतत्त्व ही नहीं होता। मनुष्यों में तो होता है लेकिन क्या संस्थाओं में भी आत्मा होती है? नहीं। नयी तालीम खादी-ग्रामोद्योग आदि में सारा ऊपर का 'टेकनिक' ही होता है। नयी तालीम के साथ क्या जोड़ना चाहिए, आदि के बारे में अनुभव भी बताये जाते हैं। किन्तु ज्ञान और कर्म को बिलकुल एकरूप बनाने की असली बात तो बनती ही नहीं।

दृष्टि में मौलिकता का अभाव

इन सबका तात्पर्य यही है कि बापू ने हमारे सामने कुछ ऐसी बातें रखी थीं जो आध्यात्मिक क्षेत्र में ही रखी जा सकती थीं दूसरे क्षेत्र में नहीं। अहिंसा सत्य अस्तेय आदि पाँच यमों के साथ और कुछ चीजें जोड़कर उन्होंने एकादश व्रत हमारे सामने रखे। यह कल्पना नयी नहीं पुरानी है। लेकिन समाज-सेवा के काम में व्रत जरूरी हैं, यह बात बापू ने ही प्रथम रखी। पहले ये बातें आध्यात्मिक उन्नति के लिए जरूरी मानी जाती थीं। [योगी, साधक आध्यात्मिक विकास करने के लिए यम नियमों का पालन करते थे। पतंजलि ने ये ही बातें कही ह। बाद महावीर पार्श्वनाथ आदि ने भी इन पर लिखा है।

मशीनें न सारी दुनिया में इनका विकास किया है। परन्तु ये सारी चीजें समाज-सेवा के लिए जरूरी हैं उनके बिना समाज-सेवा नहीं हो सकती यह सिद्धान्त बापू के आश्रम में ही मैंने प्रथम पाया।] इनमें कोई ऐसी बात नहीं थी जो मुझमें न हो। बचपन से ही मैं ब्रह्मचर्य-पालन की कोशिश करता रहा। लेकिन वहाँ जो उद्देश्य रखा गया था, वह विशेष बात थी। बापू ने हमारे सामने विश्व हित के लिए अविरोधी भारत की सेवा का उद्देश्य रखा और उस ध्येय की सिद्धि के लिए हम एकादश-व्रत मानते हैं ऐसा कहा। यह चीज हमने और कहीं नहीं पायी। बापू ने उसके साथ आश्रम का कार्यक्रम और कर्म की विविध मात्राएँ भी हमारे सामने रखीं। इस तरह देश-सेवा के एक मूल उद्देश्य (जो विश्व-हित का अविरोधी—विश्व-हित से जुड़ा हुआ था) के लिए साधकों की जीवन-निष्ठा के तौर पर 'आर्टिकल्स ऑफ फेथ' एकादश-व्रत और उनके लिए दिनचर्या उनकी पूर्ति के लिए खेती गोशाला खादी आदि का पूरा कार्यक्रम बापू ने हमारे सामने रखा। इन स्थूल प्रवृत्तियों में से जितनी हम उठा सकते हैं उठाते हैं। विश्व-हित के साथ हमारा विरोध न हो यह चाहते हैं। परन्तु बोध का जो था वह गायब हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि हम सत्य अहिंसा आदि को मानते ही नहीं हैं। परन्तु वह मूल वस्तु हममें विकसित होती है या नहीं इसकी तरफ हम ध्यान नहीं देते।

साधना की बुनियाद

बापू और दूसरों के भी जीवन में हम देखते हैं कि उनके सामने कुछ आध्यात्मिक प्रश्न थे। उन प्रश्नों की तृप्ति हुए बिना वे आगे नहीं बढ़ते थे। ईसामसीह की जिन्दगी सिर्फ ३३ साल की थी और उनमें से वे तीन ही साल सिर्फ फिलस्तीन में यानी हिन्दुस्तान के दो-तीन जिलों में घूमे थे। परन्तु आज उनके विचारों का असर सारी दुनिया पर है। ईसाइयों की संस्थाओं की उतनी कीमत नहीं है; परन्तु ईसामसीह का जो असर है, उसकी बात कर रहा हूँ। पहले

१ साल तक ईसामसीह ने क्या किया इसका पता नहीं। कहा जाता है कि वे बढ़ई का काम करते थे। परन्तु उसमें उन्होंने कौन-सी साधना की सिवा इसके कि उपवास किये और शैतान के साथ उनका मुकाबला हुआ। इससे ज्यादा हमें कुछ भी मालूम नहीं। अब तो यहाँ तक कहा जाता है कि वे तिब्बत तक आये थे। बात यह है कि कुछ बुनियादी आध्यात्मिक प्रश्न थे जिन्हें हल करके ही वे निकले। 'लव दाय नेबर एज दाय सेल्फ' इन शब्दों में उन्होंने शत्रु पर प्यार करने की जो जोरदार बात कही है वह बिना अनुभव के नहीं कही जा सकती। इसी तरह बुद्ध भगवान् ने यह सवाल उठा लिया कि 'यज्ञ में हिंसा न हो' और वे बिहार और उत्तर प्रदेश के १२-१४ जिलों में घूमे—यह तो हम सभी जानते ही हैं। लेकिन जब उन्होंने तपस्या की तो क्या किया यह किसीको मालूम नहीं। वे कितने मण्डलों में गये कितने पन्थों में गये ध्यान के कितने प्रकार उन्होंने आजमाये और इन सबके परिणामस्वरूप उनके चित्त को कैसी शान्ति मिली और कैसे यह निर्णय हुआ कि दुनिया में 'मैत्री' और 'करुणा' ये ही दो शब्द हैं—यह सब हम नहीं जानते। आगे की चीज तो जानते हैं, लेकिन पहले क्या हुआ इस बात को नहीं जानते।

ईश्वर-दर्शन भी सम्भवनीय

बापू की आत्म-कथा हम पढ़ते हैं तो उसकी कुछ थोड़ी-सी झाँकी मिलती है। रायचन्द भाई के साथ उनकी जो चर्चा हुई, वह भी हम जानते हैं। लेकिन उनके मन में आध्यात्मिक शंकाएँ थीं और उनकी निवृत्ति के बिना वे काम में नहीं लगे थे। 'मिस्टिक एक्सपिरियेन्सेज' (आत्मिक अनुभवों) के बिना बापू सेवा में नहीं लगे थे। वे कहते थे कि स्वप्न [illegible] है। इसलिए लोग समझते थे कि यह वैज्ञानिक बात है। [illegible] यह [illegible] वैज्ञानिक बात नहीं। मैंने उन्हें इस विषय में [illegible] अब्दुल गफ्फार खाँ की मदद में जाने की बात [illegible] उन्हें [illegible] था कि अब वापस आना नहीं होगा।

इसलिए उन्होंने मुझसे कहा था कि 'तुम्हारे साथ बातें करना चाहता हूँ। मैं अक्सर उनके पास नहीं जाता था। इसलिए उन्हें लगा कि यह बिना बुलाये नहीं आयेगा। १५ दिनों तक बातें चलती रहीं। पहले दो-तीन दिनों तक तो वे ही सवाल पूछते गये और मैं जवाब देता गया। परन्तु एक दिन उन्हें मैंने ईश्वर के अनुभव के बारे में पूछा : "आप सत्य ईश्वर है यह जो कहते हैं यह ठीक है। परन्तु उपवास के समय आपने कहा था कि 'अन्दर से आवाज सुनाई दी' यह क्या बात है ? क्या इसमें जादू है ?" उन्होंने कहा : "हाँ उसमें कुछ बात है। यह कोई साधारण चीज नहीं। मुझे स्पष्ट आवाज सुनाई दी। जैसे कोई मनुष्य बोलता है वैसे ही सुनाई दी।" मैं पूछता गया "मुझे क्या करना चाहिए ? उन्होंने कहा : "उपवास करना चाहिए। मैंने पूछा : 'कितने दिन का उपवास करना चाहिए ?" तो उन्होंने कहा : "इक्कीस दिन।" यानी इसमें कोई पूछनेवाला था और दूसरा जवाब देनेवाला। बिल्कुल कृष्णार्जुन जैसा संवाद था। बापू तो सत्यवादी थे इसलिए इसमें कोई गलत नहीं हो सकता। उन्होंने कहा : "मुझे साक्षात् ईश्वर ने यह बात कही।" फिर मैंने पूछा 'क्या ईश्वर का रूप हो सकता है ?" वे बोले : "रूप तो नहीं हो सकता लेकिन मुझे आवाज अवश्य सुनाई दी।" इस पर मैंने कहा : 'रूप अनित्य है तो आवाज भी अनित्य है। अगर आवाज सुनाई दी तो रूप कैसे नहीं दिखाई दिया ?" फिर मैंने उनके सामने कुछ जानकारी रखी। दुनियाभर के आत्मिक अनुभव और अपने भी अनुभव रखते हुए कहा : 'ईश्वर दर्शन कैसे नहीं दे सकता ? आपके मन में सवाल-जवाब हुए। उनका ईश्वर के साथ ताल्लुक है न ?" उन्होंने कहा : "हाँ उनके साथ ताल्लुक है। मैंने आवाज सुनी लेकिन मुझे दर्शन नहीं हुआ। मैंने रूप नहीं देखा। उसका शब्द मैंने सुना। लेकिन उसका रूप है उसका मुझे अनुभव नहीं हुआ मुझे साक्षात् दर्शन नहीं हुआ। लेकिन वैसा दर्शन हो सकता है।

कर्म-निरपेक्ष हो कर्म करें

यह सारा मैंने इसलिए बोला कि हम जीवन की गहराई में नहीं उतरते ऊपर के स्तर पर ही सारा काम चलाते हैं। मैं इसी ओर ध्यान खींचना चाहता हूँ। बार-बार कहता हूँ कि गांधीजी ने राजनीति नहीं चलायी थी। उन्होंने जो कुछ काम किया वह लोकनीति थी क्योंकि वे जनता को खड़ा करने की कोशिश करते थे। स्वराज्य प्राप्ति के पहले जो काम हुआ वह लोकनीति ही थी राजनीति नहीं। उनके कुछ साथी राजनीति चलाते हैं। अवश्य ही वे पुरानी राजनीति नहीं चलाते। उनमें और दूसरे राजनीतिज्ञों में कुछ फर्क है, लेकिन बहुत फर्क नहीं। कुछ साथी राजनीति में गये और दूसरे धर्मसंस्थाओं में गये हैं। यह सारा इतना स्थूल काम है कि जिन मनुष्यों को हम साथ रखते हैं उनको लाचारी से साथ रखते हैं। कर्मप्रधान होकर उनका संग्रह करते और फिर कोशिश करते हैं कि उन्हें सिद्धांतों का स्पर्श हो। लेकिन हम ऐसी कोशिश नहीं करते कि जिन्हें ऐसे विचार मान्य हों वे कर्मनिरपेक्ष होकर इकट्ठे हों और कर्म की जरूरत मालूम होने पर कर्म शुरू करें। आध्यात्मिक निष्ठा से ५ १ भाई इकट्ठे हों और फिर काम शुरू करें यह करने के बजाय हम पहले कर्म लेते हैं फिर मनुष्य ढूँढ़ते हैं। यानी सब काम कर्म-प्रधान होता है। इसीसे मैं परेशान हूँ। मैं सचाई के साथ यह नहीं कह सकता कि ईश्वर के अस्तित्व का भान न होता तो मैं इसमें पड़ता। मुझे यह कहना ही पड़ता है कि ईश्वर का दर्शन होता है साक्षात्कार होता है, स्पर्श होता है अन्यथा विकारों का विनाश नहीं हो सकता। यह सम्भव नहीं कि उसके दर्शन के बिना काम चलता रहे। वैसे मैं नास्तिकों का भी हजम कर लेता हूँ। जहाँ तक सामाजिक स्थूल कार्य का सम्बन्ध है नास्तिक भी चल सकता है। परमेश्वर का नास्तिक भी एक रूप है यह कहकर मैं नास्तिकों को भी हजम कर लेता हूँ, जिससे रचना रहता है मेरी प्रगति होती है।

सत्याग्रह का रूप आणविक युग में

मेरे सामने सवाल है कि क्या सत्याग्रह कोई शक्ति है ? अपने सारे काम का सारभूत शब्द अगर कोई है तो वह 'सत्याग्रह' ही है। वैसे यह शब्द मुझे उतना पसन्द नहीं क्योंकि इसमें जो 'आग्रह' शब्द है वह गलत है। फिर भी यह शब्द चल पड़ा है इसलिए लेता हूँ। अब मेरे सामने यह सवाल है कि आणविक शस्त्रों के जमाने में सत्याग्रह का रूप क्या होगा ? आणविक शस्त्रवालों के पास एक व्यापक औजार आया है जिससे वे घर बैठे दुनिया के वातावरण को बिगाड़ सकते हैं दुनिया को खतम कर सकते हैं। लेकिन हमारे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं आयी जिससे हम दुनिया का वातावरण निर्मल कर सकें। ऐसी शक्ति हमारे हाथ में आनी चाहिए। अभी तक यह कल्पना थी कि सामनेवाला मेरी आँखों की तरफ देखेगा मेरी जबान सुनेगा तो मेरी दृष्टि और शब्दों का उस पर असर हो जायगा। लेकिन अब तो दर्शन और शब्द की कोई बात ही नहीं रही। घर बैठकर भी बम फेंका जा सकता है। उसके सामने सत्याग्रह नहीं चलेगा। ऐसी हालत में सत्याग्रह का क्या रूप होगा इस पर हमें सोचना चाहिए। गांधीजी के जाने के बाद हिन्दुस्तान में सत्याग्रह के जो प्रकार चले उनमें एक 'उपवास' भी है। कहीं उपवास शुरू होता था तो अनुकूल प्रतिक्रिया होती थी। लेकिन इन दिनों उपवास का स्वरूप ऐसा बना है कि उसके बारे में सुनते ही प्रथम प्रतिक्रिया यही होती है कि कुछ गलत काम हुआ। इस तरह हमने सत्याग्रह का अशुद्धिकरण कर डाला है। सत्याग्रह चाहे वह सौम्यतर हो तो भी एक दबाव की ही बात बन गयी है। लेकिन विज्ञान के सामने धारणा पर दबाव कहाँ टिकेगा ?

तालीम शस्त्र नहीं मन्त्र बने

मैं यह सारा चिन्तन करता हूँ तो मुझे लगता है कि हमारा उद्योग के जरिये तालीम देने का विचार बिल्कुल ही स्थूल है। मैंने पहले ही कहा था कि नयी तालीम का ध्येय है—गुण-विकास

न कि केवल उद्योग के जरिये पढ़ाना। पुस्तकों के जरिये पढ़ाना एकांगी है। लेकिन हमारा मूल उद्देश्य है गुण-विकास। फिर उसके लिए आजीविका की दृष्टि से उद्योग की तालीम मानसिक विकास के लिए चिन्तन ध्यान, भक्ति उपासना आदि सब आता है। अगर मूल उद्देश्य आत्म-विकास गुण-विकास न रहा तो नयी तालीम भी एक 'टेकनिक' बन जायगा जैसा कि फ्रोबेल माण्टेसरी आदि बने हैं। मुझसे पूछा जाता है कि मांटेसरी की पद्धति और आपकी पद्धति में क्या फर्क है? मांटेसरी का एक खेल-सा बनता है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि वह निकम्मी चीज है। उसमें भी काफी सोच की है। परन्तु बापूजी ने हमसे कहा था कि बच्चा माँ के पेट में आता है तब से लेकर श्मशान तक पूरा जीवन नयी तालीम है। इसलिए अगर हम नयी तालीम का एक तन्त्र बनायेंगे जैसा कि सरकार का बनता है तो हम शुष्क बनेंगे। फिर तन्त्र ही तन्त्र रह जायगा उसमें से मन्त्र खतम हो जायगा।

मैं अपने से असन्तुष्ट

यह सारा देखकर मेरा जी घबरा उठता है। इन दिनों कभी-कभी मैं कठोर भी बोलता हूँ, जैसा कि अक्सर नहीं बोलता था। इसका कारण यही है कि मैं अपने से असन्तुष्ट हूँ। मेरी यात्रा ब्रह्म-विद्या की यात्रा होनी चाहिए, पर वह नहीं हो रही है। यहाँ गाँव गाँव के लोगों ने बहुत बड़ी तादाद में शान्ति-सेना में नाम दिये, दान भी दिये। लोगों ने हमसे कहा कि 'आपकी जो यह यात्रा चल रही है कश्मीर में इस प्रकार की यात्रा पहले-पहल शंकराचार्य ने ही की थी। जब लोगों ने यह कहा तो मुझ पर बहुत भार आ गया। वैसे यहाँ और भी कई यात्री आये होंगे किन्तु एक सामाजिक मिशन और आध्यात्मिक क्रान्ति की बात लेकर जनसाधारण तक पहुँचनेवाली ऐसी यात्रा पहले शंकराचार्य की ही हुई। उनका स्मरण कर लोग मेरी तुलना उनके साथ करते हैं, तो मुझ पर बहुत बड़ा बोझ

आ जाता है। उनकी मूर्ति मेरी आँखों के सामने खड़ी हो जाती है और लगता है कि मेरे बारे में लोग क्या सोचते होंगे।

तीन आवश्यक सुझाव

हमारे सारे काम एक बुनियादी फर्क माँगते हैं। १ जो ग्राम-दानी गाँव मिले हैं उनमें से कुछ चुनकर वहाँ हमें पूर्ण प्रयोग करना चाहिए। हमने माना है कि ऐसे प्रयोगों में नयी तालीम का क्या स्थान हो, इस पर सोचना होगा। २ शान्ति-सेना खड़ी करना। शान्ति-सेना का कुल काम नयी तालीम का है यह समझकर हम उसे रचेंगे तो एक बहुत बड़ी जमात हमारे लिए अनुकूल होगी। ३. हमारे जितने काम चलते हैं उनमें इस उपर्युक्त विचार का प्रवेश कैसे हो इस पर हमें सोचना होगा। ये तीन मुख्य बातें हैं। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय पैमाने पर तालीम को क्या रूप देना चाहिए, इस पर भी सोचना होगा और उसके लिए कुल राष्ट्र को अनुकूल बनाना होगा। मैंने जो ब्रह्मविद्या की बात कही उसका कोई कार्यक्रम नहीं बन सकता। फिर भी सोचने पर हमें कुछ-न-कुछ अवश्य सूझेगा। कारण यह तो मानी हुई बात है कि आखिर हम ब्रह्मविद्या के विकास से ही टिक सकेंगे।

जम्मू (कश्मीर)
८-६-५९

सियासत + विज्ञान = सर्वनाश २६
रूहानियत + विज्ञान = सर्वोदय

यह विज्ञान का जमाना है। इस जमाने में अब सियासत में कोई ताकत नहीं रह गयी है। इन्सान के हाथों में नये-नये हथियार आ गये हैं। इसलिए अगर फूट और तफरके बढ़ानेवाली सियासत बढ़ेगी, तो इन्सान का खात्मा होनेवाला है। पार्टीवाले यह बात महसूस नहीं करते यह उनकी बदकिस्मती है। असली बात तो यह है कि आज नये नये हथियारों की ईजाद हो रही है और वे हथियार ऐसे खतरनाक हैं कि उनकी बदौलत एक दिन दुनिया का खात्मा होने की नौबत भी आ सकती है अगर हमारे तफरके बढ़ें। इसलिए समझदार लोगों को चाहिए कि वे सियासत को दूर करें और रूहानियत से अपने मसले हल करें। मिली-जुली जोड़नेवाली सियासत चाहिए। आज तक जो सियासत रही वह जोड़नेवाली नहीं तोड़नेवाली ही रही। इसलिए मैं 'सियासत' लफ्ज़ ही छोड़ देना चाहता हूँ।

आखिर रूहानियत ही रास्ता

जब तक आप रूहानियत का रास्ता न लेकर सियासत का ही रास्ता लेंगे तब तक आपके मसले हल होनेवाले नहीं हैं। अल्जीरिया कांगो मिस्र ताइवान हिन्दएशिया कश्मीर—ऐसे कई मसले हैं। पुराने मसले कायम हैं और नये भी पैदा हो रहे हैं। इसलिए सियासत से आपके मसले हल होनेवाले नहीं हैं। मेरी बात पार्टीवालों में से कुछ लोग समझ रहे थे। वे रूहानियत का नाम लेते थे। रूहानियत का नाम सबको प्यारा है उनको भी प्यारा था। इसलिए वे कबूल करते थे। लेकिन कबूल करके फिर से अपना वही पुरानी राह पर ही जाते थे।

मैंने मजाक में कहा : 'तुम मर जाओगे तो तुम्हारे लड़के रूहानियत को उठा लेंगे।' वे कहने लगे : 'हमने जो चीज चलायी वही हमारे लड़के भी उठायेंगे।' मैंने कहा : 'ठीक है, तुम्हारे लड़के नहीं उठायेंगे लेकिन तुम्हारे लड़के के लड़के यानी चौथी पीढ़ी रूहानियत को उठा लेगी। सियासत से मसले हल नहीं होंगे, क्या यह बात चौथी पीढ़ी के दिमाग में आ जायगी?' इस तरह मैंने उनसे कहा किन्तु अपनी बात मैं उनको पूरी तरह समझा नहीं सका। मैंने हार मान ली।

मैं पार्टीबाजी सियासत के खिलाफ

आज सभी जगह पार्टीबाजी चल रही है। नयी-नयी पार्टियाँ बन रही हैं, पुरानी पार्टियाँ मजबूत बन जा रही हैं। लेकिन सियासी पार्टियों से काम नहीं बनेगा। इसलिए एक ऐसी स्वतन्त्र जमात चाहिए, जो गैरजानिबदार होकर अवाम की खिदमत करेगी। आपको मालूम है कि इस समय मैंने अपनी आवाज इस पार्टीबाजी सियासत के खिलाफ उठायी है। इसके लिए गाँव-गाँव की मिली-जुली ताकत खड़ी करनी होगी। हुकूमत विकेन्द्रित करनी होगी। अपनी सारी ताकत रूहानियत की राह पर लगाना होगा और झगड़ा पैदा किये बिना चर्चा करके मसले हल करने होंगे। मैं यह एक नयी चीज समझा रहा हूँ।

जयप्रकाश नारायण, केरल के केलप्पनजी, बिहार कांग्रेस के एक प्रमुख नेता वैद्यनाथ बाबू आदि अपनी-अपनी पार्टी छोड़कर इस काम में आये हैं। ऐसे कुछ नाम मेरे पास हैं, फिर भी कई नाम ऐसे भी हैं जिन पर मैं असर नहीं डाल सका। लेकिन मुझे इस बात का ताज्जुब है कि इतने से काम भी मेरी बात कैसे समझ रहे हैं! मेरी बात कोई समझता नहीं इसका मुझे अचरज नहीं होता। बल्कि मेरी बात थोड़े लोग भी क्यों न हों, पर समझते हैं, इसीका मुझे अचरज होता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो मेरी बात करीब-करीब समझते हैं।

आज मा वे मार्ई मेरी बात करीब-करीब समझ रहे हैं। लेकिन उनका करना भी कोई लाज़मी है। समझाना मेरा काम है। उसका नतीजा क्या आता है, इसकी फ़िक्र मैं नहीं करता। फल का छोड़ना, उसका त्याग करना यह बात मैं गीता से सीखा हूँ। नतीजा भगवान पर छोड़ देता हूँ। मैं उसकी फ़िक्र नहीं करता। कितने लोग मेरी बात समझते हैं और कितने नहीं समझते यह देखना मेरा काम नहीं है। समझाना और लोगों की खिदमत करना मेरा फ़र्ज़ है और वही मैं करता हूँ।

लोगों की ताकत बनायें

पार्टीवाले आप भी अच्छी और सच्ची नीयत से खिदमत करना चाहते हैं लेकिन व कर नहीं पाते। एक पार्टी खिदमत करने जाती है तो दूसरी पार्टी उसकी तरफ़ शक-शुबह की निगाह से देखती है। दूसरी पार्टी खिदमत करती है तो पहली उसकी तरफ़ शक की निगाह से देखती है। इस तरह देखने का नतीजा यह होता है कि जिनको खिदमत होना चाहिए उनकी खिदमत नहीं होती। सरकार से थोड़ी खिदमत होती है पर उससे लोगों की ताकत नहीं बन पाती। लोगों की ताकत नहीं बनना यह बहुत बड़ी बात है। मग़रिब (पश्चिम) से जो सियासत आयी उसने हमें तोड़ा है। पहले से ही यहाँ तफ़रके, टुकड़े मौजूद थे मग़रीबी सियासत ने और बढ़ा दिये। मज़हब के भेद ज़बान के भेद जाति के भेद—इस प्रकार से तरह-तरह के भेद मौजूद थे। वे उस सियासत के कारण और भी बढ़े। अलग-अलग पार्टियाँ बनीं। भेदों में इज़ाफ़ा हुआ। एक-एक पार्टी में महत्त्वाकांक्षी लोग होते हैं। वे भी अपना-अपना गुट बनाते हैं। एक-एक सख्स का अपना एक-एक गुट रहता है। अनेक पार्टियाँ, फिर एक-एक पार्टी के अलग-अलग गुट, गुट के गुट! नतीजा यह होता है कि देश की ताकत नहीं बनती।

लश्कर सियासत पर हावी न हो

पाकिस्तान में अयूब आया। उसी वक्त एकदम सब पोलिटिकल पार्टियाँ खतम हो गयीं। उनके दफ्तरों पर ताले लग गये। माने ताकत के सामने सियासत की कुछ नहीं चलेगी। 'मार्शल मैकेनाइज्ड आर्मी' जिनके हाथ में रहेगी कुल सियासत उन्हींके हाथ में आयगी। उनके सामने यह खतम भी हो सकती है। इसके आगे जिनके हाथ में लश्कर की ताकत रहेगी उन्हींके हाथों में ये सियासतदाँ भी रहेंगे। इससे उलटे जो लोग रूहानियत की राह पर चलेंगे वे उनकी तलवार छीन लेंगे। उनकी तलवार छीनने के लिए इनको अपने हाथ में तलवार उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जिनके हाथों में आज तलवार है उनके दिल और दिमाग में ये रूहानियत की राह पर चलनेवाले लोग बैठेंगे। नतीजा यह होगा कि जिन्होंने अपने हाथों में तलवार उठायी है वे खुद-ब-खुद वह तलवार कारखानों में हल बनाने के लिए भेज देंगे।

आनेवाला जमाना मेरा

अभी मैं लश्करवालों के सामने जाकर आया हूँ। मेरी यह खुशकिस्मती है कि मुझे उनके सामने बोलने का मौका मिला। इसका कारण यह है कि मैं सियासत से अलग हूँ। सियासतवाला कोई हो तो वह लश्कर के सामने बोलने के लिए नहीं जा सकता। वहाँ भी मैंने अपनी रूहानियत के विचार उनके सामने रखे। रूहानियत की बात उनको भी जँचती है। मैं मायूस नहीं होता। इसलिए कि मैं जानता हूँ कि आनेवाला जमाना मेरा है आपका नहीं लीडरों का नहीं।

आज हम सियासतदाँ का बड़ा जोर है। लेकिन आप देखेंगे कि एक वक्त ऐसा आयेगा जब जिन हाथों ने एटम बम बनाया, वे ही [illegible] और लोगों की खिदमत में लगेंगे। जिनके

लोग सियासत से अलग रहकर रूहानियत का आसरा लेंगे, वर्ना येलोग न विज्ञान के जमाने में टिकेंगे नहीं। विज्ञान के जमाने में रूहानियत रास्ता दिखलायगी और विज्ञान रफ्तार बढ़ायेगा। मोटर में एक यन्त्र राह दिखानेवाला और दूसरा रफ्तार बढ़ानेवाला होता है। विज्ञान आपकी जिन्दगी की रफ्तार बढ़ायेगा और रूहानियत जिन्दगी को दिशा दिखलायेगी। इस तरह दोनों की मदद से आपकी जिन्दगी चलेगी। अगर सियासत बीच में आयेगी और जिन्दगी में दखल देगी तो आपकी मोटर गड्ढे में जायगी।

सियासत + विज्ञान = सर्वनाश ¹

रूहानियत + विज्ञान = सर्वोदय ¹

रूहानियत और विज्ञान एक हो जायें तो दुनिया में बिहिश्त (स्वर्ग) उतरेगा यह आप खूब समझ लीजिये। विज्ञान का फायदा उठाना है उससे काम लेना है तो उसके साथ रूहानियत को जोड़ना होगा। और अगर उसका फायदा न उठाना हो उसके बदौलत मर मिटना हो तो बीच में सियासत लानी चाहिए।

इन्सान इस तरह नाहक खत्म होना नहीं चाहता। पर होता क्या है? अलग अलग पार्टी के लोग एक-दूसरे से मिलते भी नहीं हैं! चुनाव आता है तब एक पार्टी के लोग अवाम से कहते हैं कि तुम हमें चुनकर दो तो हम तुम्हें जन्नत में ले जायेंगे। दूसरी पार्टी को चुनकर दोगे तो वह तुम्हें दोज़ख़ में ले जायगी। ठीक इसी तरह दूसरी पार्टीवाले भी अवाम से बोलते हैं। याने अवाम के सामने एक-दूसरे को गाली देना नुक्ताचीनी करना ही उनका मोमाम रहता है। फिर आपस में टकराते हैं। मेरा राज चला तो वे मुझसे टकराते हैं उनका राज चले तो मैं उनसे टकराता हूँ—इस तरह होता है। इस बीच में अवाम तबाह हो जाती है। फिर देखते-देखते अक्सर राज चला जाता है।

दिल और दिमाग नया बने

आप देख रहे हैं कि हर सूबे में निर्माण का बहुत बड़ा प्रयत्न हो रहा है। लेकिन क्या नया समाज बन रहा है? क्या पुराने दिमागवाले पुराने इन्सान में कुछ फर्क पड़ रहा है? क्या कुछ नयी कद्रें (वैल्यूज) बन रही हैं? अगर इन सब सवालों का जवाब 'नहीं' है और आज भी अगर वे ही पुराने झगड़े फिरकापरस्ती संगदिली छोटे-छोटे जज्बात हैं तो फिर मकानात खेती और सड़कों में फर्क होने से आखिर क्या होगा? वैसे तो सैलाब आये या जलजला हो जाय तब भी क्या फर्क नहीं पड़ेगा? बस्ती की सभी मकानात वगैरह बह जायेंगे उन्हें नये सिरे से बसाना होगा। पर नया बसा देने से हुआ क्या? कुदरत मकानात कपड़े पहनने का ढंग आदि सब बदला लेकिन दिल और दिमाग में कोई बदल नहीं हुआ तो इतना ही होगा कि पुराने जमाने में जो झगड़े छोटे पैमाने पर होते थे वे अब विज्ञान की वजह से बड़े पैमाने पर होंगे। दिल और दिमाग में फर्क न पड़ने से इन्सान की जिन्दगी में इनकलाब नहीं आ सकता। रूस में कम्युनिज्म आया तो क्या हुआ? जार के हाथ में जो ताकत थी उससे ख्रुश्चेव के हाथ में क्या कम है? जार गया और स्टालिन आया। अब स्टालिन गया और ख्रुश्चेव आया। दो साल पहले यहाँ पर बुल्गानिन और ख्रुश्चेव आये थे। यहाँ पर उनकी खूब पूजा-अर्चा हुई। उसके बाद उन दोनों में मुखालिफत हुई तो अब बुल्गानिन का पता ही नहीं है! पहले राजाओं के जमाने में जो होता था वही इस जमाने में भी हुआ। इनकलाब तब होता है जब प्यार से दिल बदलता है।

नया इस्लाम बनाइये

आज कश्मीर की सरकार कुछ काम करती है लेकिन गाँव-गाँव के लोग क्या करते हैं? क्या वे मिल-जुलकर काम करने लगे हैं?

जमीन की मिल्कियत मिटाने लगे हैं। अपना मन्सूबा बनाने लगे हैं। अगर यह सब होता है तो नया इन्सान बनेगा, नहीं तो नयी दुनिया बन जायगी तब भी नया इन्सान नहीं बनेगा। सरकार की तरफ से जो काम किया जाता है, उससे दुनिया बनती है, लेकिन नया इन्सान नहीं बनता। नया इन्सान बनाने का काम वे करते हैं, जो रूहानी ताकत को पहचानते हैं। माली हालत बदलने की बात बाहर की चीज है। अन्दर की चीज बदलनी हो तो रूहानी ताकत चाहिए। नयी राह पर चलकर रूहानी ताकत बढ़ाने की हमारी यह एक छोटी-सी कोशिश हो रही है।

हर इन्सान में ताकत पड़ी है। अगर हम ताकतों को जोड़ना चाहते हैं, तो जोड़नेवाली तरकीब चाहिए। जोड़नेवाली तरकीब सियासत या मजहब नहीं, रूहानियत ही हो सकती है। मैंने मजहब और रूहानियत में जो फर्क किया है, उसे समझने की जरूरत है। मजहब पचास हो सकते हैं, लेकिन रूहानियत एक ही है। मजहब सियासत बनानें चन्द लोगों को इकट्ठा करती हैं और बाकी लोगों को अलग करती हैं। लेकिन रूहानियत कुल इन्सानों को एक बनायेगी। इसलिए आप इस तरीके की तरफ माली तब्दीली लानेवाली तरीके की निगाह से मत देखिये, बल्कि अखलाकी और रूहानी तरक्की की निगाह से देखिये। तभी इसकी अहमियत आपको मालूम होगी और आपके दिल का ध्यान उसकी तरफ होगा।

कुकरनाग (कश्मीर)
२०-८-'५९

ढाई साल पहले कन्याकुमारी में समुद्र के किनारे बैठकर हमने प्रतिज्ञा की थी कि 'जब तक भारत में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना नहीं होगी तब तक हम घूमते ही रहेंगे।' यही प्रतिज्ञा हमने 'पीरपंजाल' पर बर्फ पर ध्यानस्थ बैठकर दुहरायी थी। इस तरह यह विचार हवा में फैल गया है। हिन्दुस्तान का ग्राम-स्वराज्य की दिशा में जाना होगा और वह जायगा। राज्यों की तरफ से आज कोशिश हो रही है कि ग्रामों को अधिकार मिले। उन कोशिशों में बहुत दोष है। उनमें कई नुक्स हैं फिर भी दिशा ठीक है। वह सारा विचार सुधारना होगा फिर देश में एक हवा बन जायगी। फिर ग्रामदान भूदान सर्वोदय, ग्राम-स्वराज्य आदि का विचार गाँव-गाँव पहुँचाया जायगा और हिन्दुस्तान में ग्राम-स्वराज्य होगा इसमें कोई शक नहीं है। इसमें हम अपना अधिक-से-अधिक पुरुषार्थ, जितना खर्च कर सकते हैं करने की निरन्तर कोशिश करें।

हृदय-प्रवेश की प्रक्रिया

इस समग्र कार्य की बुनियाद आध्यात्मिक और नैतिक है। आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना किये बिना सर्वोदय-विचार प्रतिष्ठित नहीं होगा। वैसे उन मूल्यों का चिंतन करनेवाले पहले के ऋषि मानते थे। लेकिन समाज ने उनको नहीं माना। हम उन मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं इसीलिए आगे की यात्रा में घर घरों में जायेंगे और मूक संपादन करेंगे। उसमें जितना हृदय-प्रवेश और हृदय-परिचय कर सकते हैं करेंगे। हृदय-प्रवेश की एक प्रक्रिया होती है जिसका हमें ज्ञान है। फिर भी वह कितनी सधेगी, हम नहीं कह सकते। प्रक्रिया यह है कि निज देह-बन्धन ढीला पड़े। हम देह के बन्धन में बँधे हुए हैं यह ढीला पड़े बिना हृदय-प्रवेश नामुमकिन

है। हमारी कोशिश यह रहेगी कि यह बन्धन, जिसमें इस शरीर के साथ जीवात्मा जकड़ा हुआ है वह छूटे ढीला पड़े। हम यह कोशिश करते रहेंगे तो सहज ही बाहरी बहुत सारी चीजों को हम छोड़ देंगे। अब हम स्थूल विचार लोगों पर छोड़ेंगे और सूक्ष्मसूक्ष्म दुनियादारी विचार ही रखते जायेंगे। बाकी जितना करना है लोग ही करेंगे। हम सिर्फ समझा देंगे उससे ज्यादा कुछ नहीं करेंगे। इसीसे देश की ताकत बनेगी।

विचारों में शक्ति

अकसर हम देखते हैं कि लोग मार्गदर्शन करना चाहते हैं, राह दिखाना चाहते हैं जिससे बहुत-सी पार्टियाँ बनती हैं। उनमें ऊपर से नीचे मार्गदर्शन दिया जाता है 'डिसिप्लीन—अनुशासन—लादा जाता है और संगठन को कसकर बनाया जाता है। हर जमात की यही फिक्र रहती है कि हमारा संगठन मजबूत बने। यह गठन बनाने की बात हमें कभी नहीं जँची। इस प्रकार के संगठनों से सत्कार्य नहीं बन सकता। जिसमें जनता की वासना तरंगित हो वह अवश्य ही सत्कार्य है ऐसा नहीं कह सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि जितना मजबूत संगठन बनेगा उतना कार्य बनेगा। बहुतों का हमारी विचार पद्धति पर यह आक्षेप है कि बाबा बहुत हवा पैदा करता है, लेकिन संगठन नहीं करता है। अगर कसकर संगठन बनाता तो सब काम हो जाते। लेकिन हम विचारों की जितनी कीमत महसूस होती है और दूसरी किसी बात की नहीं। हम समझते हैं कि विचारों में शक्ति होती है। हम नहीं मानते कि विचारों के अलावा दूसरी किसी चीज में शक्ति होती है। लेकिन लोग संगठन-शक्ति में ही विश्वास करते हैं।

मानव जीवन की संकुचितता के कारण

मैं [illegible] मिलने वाले हैं [illegible] भाषा [illegible] ही इस विज्ञान के जमाने

में लय होनेवाले हैं। अब तो इधर विश्व रहेगा और उधर मानव। बीच की सब कड़ियाँ ढीली होनेवाली हैं। एक ग्राम को समूह मान कर मानव उसमें अपना सब कुछ समर्पण करेगा समाज को सारा धन देगा लेकिन उसका अपना विचार स्वतन्त्र रहेगा। स्वतन्त्र मानव और विश्व इन दोनों के बीच जकड़नेवाली कोई कड़ी विज्ञान सहन नहीं करेगा। आज तक जातियों ने विधि विधानों से मानव को बहिष्कार आदि से जकड़ रखा था। अनेक धर्म-पन्थों ने मानव को नाना उपासनाओं में जकड़ रखा था। अनेक पुस्तकों ने अपना भार सिर पर डालकर मानव को जकड़ रखा था। मैं कहना चाहता हूँ कि मैं किसी पुस्तक का भार सिर पर नहीं उठाना चाहता। अगर हम मानें कि किसी पुस्तक में जो लिखा है उसमें से हर वाक्य भगवद्-वाक्य है उस पर सोचना नहीं है तो मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जायगी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं रहेगी। अमुक लोगों ने राष्ट्र-भावना पैदा करके मनुष्यों की बुद्धि को संकुचित कर दिया है। इन सब कारणों से मनुष्य जीवन संकुचित बना है।

अध्यात्म-विद्या और विज्ञान की एकवाक्यता

अध्यात्म-विद्या इन सबके खिलाफ पहले से ही लड़ती थी। लेकिन अब विज्ञान भी इनके खिलाफ बोल रहा है। जाति धर्म पन्थ राष्ट्र—ये सारे काल्पनिक भेद तोड़ो यह बात वेदान्त पहले से ही कहता आया है। पहले लोग इसे सुनते थे और बहुत थोड़े लोगों के दिमाग में यह बात बैठती थी। अब ये विचार बहुत दूर के नहीं रहे हैं। इनके बिना हमारा काम चलेगा हमारे जीवन के लिए उनकी जरूरत नहीं है ऐसी परिस्थिति अब नहीं रही। अब तक हम इन विचारों को ऊँचे ताक पर रखते थे और छोड़ देते थे। लेकिन अब जाति पन्थ राष्ट्र आदि भेदों को तोड़ने की बात विज्ञान सीख रहा है। इस तरह एक बाजू से विज्ञान और दूसरी बाजू से वेदान्त खड़ा किया दोनों एक ही चीज कर रहे हैं और इन भेदों पर प्रहार

कर रहे हैं। इसलिए समझना चाहिए कि सिपाही और मजहबी लोगों मे अब तक अपने जो कुछ फिरके बनाये हैं, वे आखिरी साँस ले रहे हैं। इसके बाद उन्हें खतम होना है। यह बात मैंने कश्मीर में तीसरी बार कही है। खुशी की बात है कि हमारे बड़े-बड़े राजनीतिक नेता उसूलन इसे मानते हैं। मैं कहता हूँ कि उसूलन मानते हो यह तो अच्छी बात है। अब आप अपने व्यवहार को उससे कितना भी दूर रखो तो भी आखिर यह चीज आप पर आ गिरेगी और आपको उसे कबूल करना होगा। एक बात को उसूलन मानने पर उसे कब तक टाल सकोगे और अपना पुराना रवैया कब तक चला सकोगे।

राजशक्ति सीमित हिंसा को लेकर काम करती है

इन दिनों बहुत से लोग बड़ी-बड़ी बात करते हैं और हिंसा के खिलाफ बोलते हैं। इसके मानी यह नहीं कि वे अहिंसा में निष्ठा रखते हैं। इन दिनों कई लोग 'न्यूक्लीयर वेपन्स' के खिलाफ खड़े हैं। व कहते है कि दुनिया क हित क लिए उनका प्रयोग नहीं होना चाहिए। इस तरह बार बार से कहनेवाले अहिंसक नहीं होते हैं। वे तो घबराये हुए हैं। वे समझते हैं कि 'न्यूक्लीयर वेपन्स' आयेंगे तो अपने 'कनवेन्शनल वेपन्स' नहीं चलेंगे जिनको वे चलाना चाहते हैं। वे चाहते ह कि अपना दबदबा बना रहे ताकि दण्ड-शक्ति के आधार पर हम समाज को कसकर बाँध सकें और अपना राज चला सकें। उन्हें भय है कि इन नये अस्त्रों क कारण उनके पुराने शस्त्र टूट पड़ेंगे। व लोग अहिंसा क हित म नहीं बल्कि सीमित हिंसा क हित म काम कर रह है। राज-शक्ति सीमित हिंसा को लेकर काम करती है। उन लोगों को भय है कि उनकी दण्ड-शक्ति अब काम नहीं करेगी इसलिए व न्यूक्लीयर वेपन्स क खिलाफ बोल रहे हैं।

आणविक युद्ध अहिंसा क निकट ह

हम ... ... वेपन्स क खिलाफ हैं। लेकिन हमने कहा है ... ... (... -युद्ध) का कोई डर नहीं है। हम 'वर्ड

बार' से कहते हैं कि तू आना चाहे तो जल्दी आ जा ! मुझे तेरा डर नहीं है। मुझे तो डर इन छोटे-छोटे शस्त्रास्त्रों का है। लाठी, कृपाण, बन्दूक, तलवार—ये सारे भयानक शस्त्र हैं। ये खतम होने चाहिए। इन्हींके कारण दुनिया में अशान्ति और भय पैदा होता है। 'वर्ल्ड वार' मानव नहीं लाता है। वह तो 'डिवाइन' (दैवी) होती है। जब परमेश्वर चाहता है कि संहार हो तब वह मानवों को प्रेरणा देता है। उस हालत में मेरे जैसे की क्या मजाल रहेगी कि मैं अहिंसा की बात करूँ! फिर तो मेरे हाथ में भी तलवार आयेगी। ईश्वर के खिलाफ कौन टिक सकता है? अगर ईश्वर चाहता है कि हमारा मानव-समाज साफ हो जाय और फिर 'क्लीन स्लेट'—कोरी पाटी—हो जाय और फिर से नयी दुनिया पैदा हो तब वह यह सब कर सकता है। कल अगर भूकम्प हो जाय या सारी पृथ्वी जलमय हो जाय और अफ्रीका के वीरान जंगलों में जो थोड़े-से लोग रहते हैं वे ही बच जायँ तो फिर नये सिरे से 'सिविलाइ-ज़ेशन'—सभ्यता—का आरम्भ होगा। फिर वे लोग याद करेंगे कि पहले हवाई जहाज भी थे। फिर वे रामायण के जैसे महाकाव्य लिखेंगे। वे लोग यह भी लिखेंगे कि एक जमाने में ब्रह्मास्त्र चलता था जिससे सब लोग मूर्छित हो जाते थे। मानव के विकास की नये सिरे से शुरुआत होगी। अगर ईश्वर यही चाहता है तो उसे कौन रोकने-वाला है? इसलिए उसकी मुझे कोई फिक्र नहीं। हम 'वर्ल्ड वार' से डरते नहीं हैं। हम समझते हैं कि 'वर्ल्ड वार' अहिंसा के बिलकुल नजदीक है। जैसे वर्तुल के दो सिरे बिलकुल नजदीक होते हैं वैसे ही 'वर्ल्ड वार' और अहिंसा बिलकुल नजदीक हैं। यह समझने की जरूरत है। 'वर्ल्ड वार' [illegible] और अहिंसा को दो तरह भिन्न जाता है। बीच में छोटे-मोटे युद्ध नहीं रहेंगे। इन दिनों अक्सर लोग 'वर्ल्ड वार' का हौआ खड़ा करते हैं और कहते हैं कि [illegible] उनके 'प्लान्स'

१

वेपन्स' जारी रहें और वे अपना राज चला सकें। इसीलिए जो लोग 'न्यूक्लीयर वेपन्स' का विरोध करते हैं वे फाँसी की सजा का और जेल का विरोध नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि 'न्यूक्लीयर वेपन्स' के रहते उनकी फाँसी जेल आदि सब खतम होनेवाला है। वे चाहते हैं कि फाँसी की सजा रहे ताकि उनका राज चले।

मनुष्य को अहिंसा की प्रेरणा कहाँ से होती है, हम कह नहीं सकते हैं। बहुत लोग समझते हैं कि आज का जो कानून बना है, वह ढोंग ढकोसला है। राज चलानेवाले चाहते हैं कि उनका दबदबा बना रहे लेकिन उनके दिन लद गये हैं। उनके दिन गिने हुए हैं। अब उनकी नहीं चलेगी। इस बात को वो वे भी जानते हैं लेकिन फिर भी कोशिश करते हैं कि जब तक चले चलाते रहो। राजनीतिज्ञों का यही रवैया रहता है। वे चाहते हैं कि समस्याओं को दूर ढकेला जाय ताकि हमारे जीते जी वह समस्या न पैदा हो। फिर अपने बेटे के सामने आ जाय तो हर्ज नहीं। वे चाहते हैं कि समस्याओं को दूर ढकेला जाय। वे उसका हल निकालना नहीं चाहते हैं। हमारी 'मिनिस्ट्री' के रहते समस्या दूर ढकेली जाय, तो ठीक है। फिर अगली 'मिनिस्ट्री' के सामने समस्या भले ही पैदा हो ऐसा वे सोचते हैं। इस तरह उनका बहुत संगनजरिया होता है। वे बिलकुल नजदीक का देखते हैं दूर का नहीं देखते हैं। 'परम् पश्यत माऽपरम् दीर्घम् पश्यत मा ह्रस्वम्।' दूर का देखो नजदीक का मत देखो यह बात ऋषियों ने कही है। लेकिन राजनीतिज्ञ बिलकुल नजदीक का देखेंगे और उतना थोड़ा-सा सँभल गया तो काम बन गया ऐसा मानेंगे।

कस्तूरबाग्राम

१-१-८-६

हमने 'गीता-प्रवचन' में सांख्य और योग ऐसे दो विभाग बताये हैं। ये दो विभाग मिलकर परिपूर्ण जीवन-शास्त्र बनता है। जीवन शास्त्र का एक अंश है—सांख्य और एक है—योग। सर्वोदय के भी सांख्य व योग ऐसे दो अंश हैं। दोनों मिलकर परिपूर्ण सर्वोदय-विचार बनता है। सर्वोदय का जो सांख्य याने थियरी है वह मैं आज कहूँगा।

ग्रामोद्योग व यंत्रोद्योग का समन्वय

सर्वोदय का मूलभूत विचार है कि परस्पर हितों का विरोध न हो। मेरे हित में आपका हित है। आपके हित में मेरा हित है। दोनों के हित में देश का हित है। देश के हित में मेरा व आपका हित है। देश-हित का विश्व के हित का विरोध नहीं। विश्व के हित का देश के हित को विरोध नहीं। इस तरह सर्वोदय अविरोधी है। यह है बुनियाद।

सर्वोदय-विचार में ग्रामोद्योग व यंत्रोद्योग भी परस्पर अविरोध से एक साथ रह सकते हैं। उनका क्षेत्र विभाजित करना होगा। किस क्षेत्र में ग्रामोद्योग रखा जाय व किस क्षेत्र में यंत्रोद्योग, ऐसा विभाजन हो जाय तो एक ही देश में ग्रामोद्योग व यंत्रोद्योग चल सकते हैं। ग्रामोद्योग व यंत्रोद्योग एक-दूसरे के विरोधी होने ही चाहिए, ऐसा नहीं। दोनों का समन्वय कर सकते हैं।

तीन प्रकार के यन्त्र

यन्त्र तीन प्रकार के हैं। एक संहारक यन्त्र, दूसरा समयबचावक यन्त्र व तीसरा उत्पादक यन्त्र। संहारक यन्त्र याने 'मशीनगन' और जिनका उपयोग मानव-संहार में ही होता है। जो शस्त्रास्त्र इत्यादि बनाते हैं उसका नाम है संहारक यन्त्र। सर्वोदय में संहारक

यन्त्रों के लिए अवकाश नहीं। संहारक यन्त्र का हम सर्वोदय-विचार के लोग विरोध करते हैं।

समयसाधक यन्त्र संहार भी नहीं करते व उत्पादन भी नहीं करते समय बचाते हैं। जैसे मोटर, रेलवे हवाई जहाज आदि। इन सबसे न तो उत्पादन होता है और न संहार। समय बचता है। हवाई जहाजों में इतनी शक्ति है कि बम्बई से लन्दन बारह घण्टे में जाते हैं। ४ साल पहले दो साल लगते थे। अब १२ घण्टे लगते हैं व समय बचता है। तो ये समयसाधक यन्त्र हैं। सर्वोदय में इसका विरोध नहीं। सर्वोदय को ये पसन्द हैं मान्य हैं। नये यन्त्र हमको मान्य है। बस यहाँ से चन्द्रमा पर भी चलेंगे। इसलिए राकेट बनेंगे। राकेट भी सर्वोदय को मान्य हैं। संहारक यन्त्र सर्वथा अमान्य हैं समयसाधक यन्त्र सर्वथा मान्य हैं।

उत्पादक यन्त्रों के दो प्रकार

अब उत्पादक यन्त्र रहे। उत्पादक यन्त्र भी निर्माणकारक हैं। उत्पादक यन्त्र दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार मनुष्यों के श्रम की पूर्ति करते हैं। अपने हाथों के श्रम से हम जो काम नहीं कर सकते हैं वह करने में सहायता देते हैं वे यन्त्र। 'पूरक' नाम है उनका। उत्पादक यन्त्र का एक प्रकार है पूरक यन्त्र। वे मनुष्य के श्रम की पूर्ति करनेवाले हैं। हम हाथ से सूत कातेंगे तो हमारा काम पूरा नहीं होगा। तकली से थोड़ी मदद हुई चरखों से ज्यादा मदद होगी, अम्बर चरखों से उससे भी ज्यादा मदद होगी। इस तरह श्रम की पूर्ति जो यन्त्र करते हैं व पूरक उत्पादक यन्त्र हैं। जो यन्त्र उत्पादन करते हैं ज्यादा लेकिन मजदूरों को कम करते हैं वे हैं 'मारक' यन्त्र। उत्पादक यन्त्र के दो प्रकार पूरक व मारक। लेकिन कौन-सा यन्त्र पूरक है व कौन-सा मारक इसका निर्णय देश-काल की परिस्थिति के अनुसार करना होगा। अमरिका में जो यन्त्र पूरक होगा वह हिन्दुस्तान में मारक हो सकता है। आज जो यन्त्र

मारक है, वह कल पूरक भी हो सकता है। इसका रूप कालमानानुरूप, स्थलमानानुरूप व परिस्थिति के अनुरूप बदलेगा। ट्रेक्टर अमेरिका में चल सकता है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति बारह एकड़ जमीन है। हिन्दुस्तान में प्रति व्यक्ति एक एकड़ जमीन है। हिन्दुस्तान से बारह गुना जमीन अमेरिका में पड़ी है। वहाँ ट्रेक्टर चल सकता है। वहाँ भूमि अधिक व मनुष्य-संख्या कम है। इसलिए मनुष्य की मदद में उसकी पूर्ति में ट्रेक्टर आता है। हिन्दुस्तान में मनुष्य ज्यादा व जमीन कम। यहाँ अगर ट्रेक्टर का उपयोग करेंगे तो मनुष्यों को मजदूरी नहीं मिलेगी। मनुष्य बेकार बनेगा। इसलिए ट्रेक्टर यहाँ मारक होगा। अमेरिका में पूरक होगा। अमेरिका में ट्रेक्टर बनते हैं हिन्दुस्तान में बनते नहीं। इसलिए भी हिन्दुस्तान में वह मारक बनेगा। अमेरिका में गाय का दूध पीते हैं लेकिन बैलों को खाते हैं और खेती ट्रेक्टर से करते हैं। हिन्दुस्तान में गाय का दूध पीयेंगे। बैलों को मारेंगे नहीं। भारतीय संस्कृति यह मान्य नहीं करती कि बैलों को खाया जाय। फिर ट्रेक्टर हमको बेहुत महँगा होगा। हमको ट्रेक्टर को भी खिलाना पड़ेगा और बैलों को भी खिलाना पड़ेगा। यह अनइकॉनॉमिकल हो जायगा।

उन लोगों पर बैलों की रक्षा करने की जवाबदारी आती नहीं, इसलिए ट्रेक्टर उनके लिए 'इकॉनॉमिकल' होता है। हम ट्रेक्टर की भी रक्षा करेंगे व बैलों की भी रक्षा करेंगे इसलिए ट्रेक्टर हिन्दुस्तान में मारक होंगे व अमेरिका में पूरक होंगे।

पड़ती जमीन को तोड़ने में ट्रेक्टर का उपयोग कर सकते हैं। उसमें कोई बाधा नहीं विरोध नहीं; लेकिन खेती के काम में यहाँ उपयोग करेंगे ट्रेक्टर का तो बैलों को मारना पड़ेगा। यह हम चाहते नहीं। बैल खाद देते हैं ट्रेक्टर खाद नहीं देता। तो सिन्द्री का 'मन्यूअर' खरीदना पड़ेगा। हिन्दुस्तान की 'इकॉनॉमी' आज गाय और बैल पर खड़ी है।

यन्त्र एक स्थान पर पूरक हो सकते हैं व दूसरे देश में मारक हो सकते हैं। इसका कोई कायम नियम नहीं है। देश-काल की परिस्थिति के अनुसार कौन-सा यन्त्र मारक है व कौन-सा पूरक है उसका निर्णय करना पड़ेगा। ये हमारे विचार हैं, जो यन्त्र और ग्रामोद्योग के बारे में सर्वोदय का विचार कहा जा सकता है।

साइन्स का उपयोग

सर्वोदय का एक बहुत बड़ा विचार है कि 'साइन्स' पूर्ण उपयोग करना चाहते हैं। हमें 'इलेक्ट्रिसिटी' व एनर्जी चाहिए। लेकिन 'साइन्स' का उपयोग कहाँ किया जाय इस विषय में सर्वोदय के अपने विचार हैं। अध्यात्मशास्त्र मार्गदर्शन करेगा। अग्नि का शोध हुआ मैं वह नहीं था। अब सब दूर अग्नि है। शोध होने के बाद अग्नि का उपयोग घर को आग लगाने में भी कर सकते हैं व रसोई पकाने में भी कर सकते हैं। तो अग्नि का उपयोग घर जलाने में करना या पकाने में करना यह मानव का अध्यात्मशास्त्र तय करेगा। ऐसे ही आटोमिक एनर्जी कल आ जायगी तो उसका उपयोग कैसे करना इसका निर्णय हम करेंगे परन्तु साइन्स से हमारा विरोध नहीं। साइन्स का आदर है स्वीकार है। तो उसका अप्लीकेशन कहाँ करना यह सोचना होगा और उसका नियमन नियन्त्रण करना होगा। यह नियमन नियन्त्रण परिस्थिति के अनुसार बदलेगा।

यह यांत्र में सर्वोदय के शास्त्र का विवरण है। इसमें किसीके हित का विरोध नहीं पूरा अविरोध है। यन्त्र-उद्योग व ग्रामोद्योग का विरोध नहीं। परिस्थिति को देखकर उनको 'एडजस्ट' कर सकते हैं।

कुआ (बिहार) —समाज विकास विभाग के अधिकारियों
२८ । ९ के समक्ष दिया गया प्रवचन।

सर्वोदय-विचार इतना गहरा है कि हम उस पर अमल करने की कोशिश ही कर सकते हैं पूरा अमल नहीं हो सकता। सर्वोदय के पूरे अमल के लिए परमेश्वर के दर्शन की जरूरत रहेगी। बापू कहते थे कि उनका कुल जीवन साधना सत्याग्रह आदि काम परमेश्वर की खोज के लिए है। अक्सर ईश्वर की खोज करनेवाले एकांत में ध्यान-धारणा आदि करने जाते हैं। बापू एकांत में नहीं गये थे लोगों के बीच काम करते थे। यह ठीक है कि वे ध्यान प्रार्थना के लिए पंद्रह बीस मिनट निकालते थे। लेकिन वे कहते थे

"ध्यान तो हमारे काम में हर क्षण होना चाहिए। और एकांत तो जनता में काम करते-करते प्रतिक्षण मिलना चाहिए। एकांत में हम जाते हैं तो हमारा मन घूमता है। वह कैसा एकांत हुआ? सच्चा एकांत तो वह होगा जहाँ हम मन से अलग होंगे। वैसे दुनिया से थोड़े ही अलग होना है? इसलिए मन से अलग होकर जन-सेवा में एकांत का अनुभव वे हमेशा करते थे और कहते थे कि ईश्वर की खोज के लिए और दर्शन के लिए मेरा जीवन है।

गुणग्रहण से ईश्वर-दर्शन

ईश्वर-दर्शन क्या है यह समझना चाहिए। हिन्दुस्तान में ईश्वर के लिए बहुत भक्तिभाव है बल्कि चीनी लेखक लीन यु तांग ने लिखा है कि हिन्दुस्तान 'गॉड इन्टॉक्सिकेटेड लैंड'—ईश्वर से अभिभूत भूमि—है। बात सही है। लेकिन ईश्वर की खोज किस तरह होगी? ईश्वर गुणमय है—सत्य प्रेम करुणा आदि मंगल गुण जिसमें भरे हैं। इन सब गुणों की परिपूर्णता ही ईश्वर है। सामने जो-जो मनुष्य आते हैं उनमें गुणदर्शन होना चाहिए। अगर हमें किसमें दोषों का

दर्शन हुआ तो हमें 'माया' का दर्शन हुआ, ईश्वर का नहीं। किसीमें गुण का और दोष का दर्शन हुआ, तो माया और ईश्वर दोनों का थोड़ा-थोड़ा दर्शन हुआ। वह स्पष्ट दर्शन नहीं गिना जायगा।

स्पष्ट दर्शन तो तब होगा, जब हम हरएक को देखकर गुण का ही दर्शन करेंगे। ईश्वर का एक-एक अंश एक-एक रूप में प्रकट हुआ है और दोष जो दीखते हैं, वह माया का ऊपर का छिलका है— जैसे बीज के ऊपर छिलका होता है। उस माया के आवरण को भेद करके स्पष्ट शुद्ध दर्शन होना चाहिए, अलग-अलग गुणों का दर्शन होना चाहिए। इस तरह ईश्वर का एक-एक अंश देखने को मिलेगा तो उसके बाद ईश्वर का समग्र दर्शन होगा। अतः हमेशा गुणग्रहण, गुणचर्चा और गुणस्मरण करना चाहिए। दोषग्रहण, दोषचर्चा, दोषस्मरण कभी नहीं करना चाहिए। इसलिए हमने कहा कि 'अनिंदा' का व्रत होना चाहिए।

किसीका दोष हमें दीखता है तो वह हमारा ही दोष है, यह मानना चाहिए। उसकी निंदा करना दूसरा दोष होगा, और उसके पीछे उस दोष की चर्चा या निंदा करना, यह तीसरा दोष हो गया। इस तरह एक के बाद एक दोष का संपुट चढ़ेगा, तो गुणदर्शन नहीं हो होगा और गुणदर्शन नहीं होगा तो ईश्वर का दर्शन लोप होगा। इसलिए हमें अपने भी दोषों का दर्शन नहीं करना चाहिए। अपने गुणों का ही दर्शन करना होगा। इस तरह सर्वत्र गुणस्तवन, गुणग्रहण, गुणश्रवण होना चाहिए। इसीको भगवान् के गुणों का स्तवन कहते हैं। हम सत्य, प्रेम और करुणा कहते हैं। जहाँ-जहाँ हमें सत्य का अल्प दर्शन हुआ, वहाँ हमें ईश्वर का दर्शन हुआ। बालू के कण पड़े हैं, उसमें थोड़े शर्कराकण पड़े हैं। चींटी उसमें से शर्कराकण लेती है। उसी तरह सत्य का अल्प दर्शन ले लिया। कहीं प्रेम का दर्शन हुआ, वह ले लिया। कहीं करुणा का दर्शन हुआ, वह ले लिया। कहीं और कोई देखा, उसे ले लिया।

इस तरह हरएक का गुणग्रहण करते-करते हमारा हृदय गुणभंडार होगा तब हमें भगवान् का परिपूर्ण दर्शन होगा।

बापू इसलिए कहते थे कि मैं कोशिश में हूँ कि भगवान् का परिपूर्ण दर्शन हो। माया-ब्रह्म दोनों का दर्शन न हो। आज हालत यह है कि गुणों का दर्शन नहीं होता दोषों का ही होता है। वे दोष ही सामने आते हैं। वे होते ही हैं ऐसा नहीं। जब तक मनुष्य के हृदय में प्रवेश नहीं होता तब तक बुराई ही दीखती है क्योंकि हेतु का पता कहाँ चलता है। कानून में भी संशय का लाभ अपराधी को, गुनहगार को दिया जाता है, जिसे बेनिफिट ऑफ डाउट कहते हैं। जब तक हेतु का दर्शन नहीं होता तब तक उसे अपराधी नहीं कह सकते। इस तरह हम एक-एक मनुष्य के दोषों के परीक्षक होंगे तो हमें दूसरा धंधा ही नहीं रहेगा। वह काम हमसे नहीं होगा। वह तो ईश्वर का काम है। इसलिए हमें गुणग्रहण करना चाहिए। एक का दोष देखकर वह स्मरण में रह गया दूसरे किसीका दोष देखकर वह स्मरण में रह गया तीसरे का तीसरा दोष स्मरण में रह गया और ये सब दोष मेरे हृदय में बैठे—जैसे गाँव के हर घर का कचरा घूरे पर जमा होता है वैसे हमारा हृदय सबके दोषों का संग्रह-स्थान होगा। उससे परमेश्वर का पूर्ण आच्छादन होता है यानी माया के आच्छादन के कारण परमेश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। भक्ति के बिना परमेश्वर की खोज उसका दर्शन नहीं हो सकता और गुणग्रहण के बिना गुणविकास के बिना भक्ति नहीं हो सकती।

गुणग्रहण से गुणविकास

सामनेवाले में जो गुण है उसका दर्शन होना चाहिए। उसे स्वीकार करके अपने हृदय में स्थान देना चाहिए। इसका नाम है गुणग्रहण। फिर उस गुण का विकास करना चाहिए। सामनेवाले का गुण हमारी हृदय-भूमि में हमने बोया। खेत में किसान एक बीज बोता है तो वह सौगुना होता है, हजारगुना होता है। वैसे हमारी

मनोभूमि शुद्ध हो और उसमें सामनेवाले का गुण बो दिया, तो वह पल्लवित होगा। इसका नाम है गुणविकास। प्रथम गुणदर्शन, फिर गुणग्रहण और बाद में गुणविकास यह भक्ति की प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया से सर्वत्र छिपी परमेश्वर की हस्ती का दर्शन होगा।

हमारा दान का सेवा का त्याग का सत्याग्रह का कार्यक्रम सबका सब भगवान् की छिपी शक्ति के दर्शन के लिए है। सत्याग्रह में हम क्या करते हैं? दुःख-कष्ट सहन करते हैं और उसमें जो अच्छा अंश है वह बाहर निकालते हैं। सामने अच्छा अंश होना चाहिए न? अच्छा अंश न हो तो वह कहाँ से आयेगा? सत्याग्रह में यह श्रद्धा होती है कि सामने अच्छा अंश है। यही है गुणदर्शन।

इस गुणदर्शन के आधार पर ही सत्याग्रह है। सामने जो व्यक्ति है उसमें जो गुण है वह प्रभावी हो प्रतिष्ठित हो ऐसी कोशिश करेंगे तो दोष निरसन होगा। उस गुण को प्रभावी करने के लिए जो दुःख सहन करना पड़ता है वह सत्याग्रह ही करता है। सत्याग्रही में यही गुण है कि वह सामनेवाले में जो गुण है उस पर श्रद्धा करता है। इसी श्रद्धा पर सत्याग्रह खड़ा है इसी श्रद्धा पर दान का कार्यक्रम चलता है।

सर्वोदय : गुणदर्शन का कार्यक्रम

इसीलिए कुल का कुल सर्वोदय-कार्यक्रम गुणदर्शन पर आधारित है। यह गुणदर्शन हो तो ईश्वर का दर्शन होगा। उसका अंश-मात्र दर्शन भी क्यों न हो यह होगा। पूर्ण अंश का दर्शन एकदम तो नहीं होगा। आज एक अंश का दर्शन होगा कल दूसरे का। मान लीजिये आज दान का कार्यक्रम हुआ। हमें एक अंश का दर्शन हुआ। लोगों के हृदय में जो उदारता है, उसका दर्शन हुआ। शान्ति-सेना का काम चला लोग मर-मिटने के लिए राजी हो गये दंगा मिटाने को तैयार हो गये तो लोगों के हृदय की निर्भयता का दर्शन हुआ। भूदान के जरिये उदारता का दर्शन शान्ति-सेना के कार्यक्रम

द्वारा 'अभय' का दर्शन, खादी के द्वारा स्वावलंबन वृत्ति आत्मोद्धार की वृत्ति का दर्शन होगा। 'स्वच्छ भारत' आंदोलन चला तो स्वच्छता का शुचिता का पावित्र्य का दर्शन होगा। इस तरह एक-एक व्यापक सामाजिक कार्यक्रम करते-करते एक-एक में गुणदर्शन करते-करते हम आगे जायेंगे तो हमें दर्शन होगा। यही परमेश्वर के समग्र दर्शन की प्रक्रिया है। यह एकदम नहीं होगा। जब तक शरीर है तब तक कोशिश चलेगी। इस वास्ते बापू कहते थे कि हमारी खोज चल रही है। हमें अभी तक दर्शन नहीं हुआ है। इस खोज के लिए ही हमारा जीवन है। हमारे जीवन में ही खोज पूरी हो गयी, तो हम ही ईश्वर हो गये ऐसा होगा। इस वास्ते हमने एक श्लोक बनाया है जिसमें हमारा सर्वोदय का विचार रखा है :

"ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः जीवनं सत्यशोधनम्।'

ब्रह्म सत्य है और विश्व में भरा है। विश्व उसकी स्फूर्ति है। उस प्रकाश में इस विश्व में उस सत्य की खोज करना हमारे जीवन का कार्यक्रम है।

रामगंज (बंगाल)
११-२-'६१

विनोबा-साहित्य

गीता-प्रवचन

गीता पर अनूठी पुस्तक। मौलिकता, सुबोधता और सरसता से ओतप्रोत। संशोधित नया संस्करण जिसमें गीताध्यायसंगति के अलावा श्लोकों के मराठी मूल प्रवचन भी हैं। पृष्ठ ३१२, मूल्य १ २५ सजिल्द १॰ ।

शिक्षण-विचार

शिक्षा के सम्बन्ध में मौलिक और क्रान्तिकारी विचार। आज की शिक्षा के मूल्य समझे बिना देश को स्वराज्य का पूरा आनन्द नहीं मिल सकता। चौथा परिवर्धित संस्करण। पृष्ठ १५८, मूल्य २५ ।

साहित्यिकों से

भारतीय वाङ्मय की व्याख्या करते हुए साहित्यिकों से वाग्दान की अपील। उत्तरप्रदेश बिहार, उत्कल तमिलनाड केरल महाराष्ट्र, गुजरात आदि के साहित्यकारों के समक्ष व्यक्त किये गये साहित्य और साहित्य के शक्ति-सम्बन्धी विचार। पृष्ठ १७६ मूल्य १ ।

साम्यसूत्र

पू. विनोबा-रचित साम्यसूत्रों पर उन्हीं का कुछ सूत्रों पर किया गया भाष्य। गीता-प्रवचन का सारतत्त्व। पृष्ठ ७६ मूल्य ३० ।

ज्ञानदेव चिन्तनिका

सन्त ज्ञानेश्वर के चुने हुए १५ भजनों का सरल और सरस उद्बोधक सार। पढ़ने में गद्य-काव्य का-सा आनन्द आता है। पृष्ठ १७६ मूल्य १ । तीसरा संस्करण।

बड़े सूचीपत्र के लिए लिखिये।

———